पिपासा

एक

एक प्याले में चाय और एक तश्तरी में कुछ मिठाइयाँ कमलनयन के सामने हैं; और इस आतिथ्य-सामग्री की ओर देखता हुआ वह सोच रहा है—"यही, इसी प्रकार का, सुख-संतोषमय जीवन वह चाहता था—यही, बस इतनी ही, उसकी आकांक्षा थी। परन्तु और तो सब हुआ, यही नहीं हो सका।"

उसने देखा, चाय का रंग बादामी है। चम्मच उठाकर प्याले को अच्छी तरह घोलकर, चम्मच-भर चाय उसने पी ली। तब उस घूँट को कंठ से उतारते हुये उसे जान पड़ा—वैसी साधारण चाय नहीं है—काफ़ी गहरी है।

और विचारों के तारतम्य में वह फिर उलझ गया।

—"लेकिन इस जगत् में, इस स्थिति में, क्या केवल वही एक है? यह दारिद्रय, यह हीनता, यह परवशता तो आज सारे जगत् के मानव-वर्ग की समस्या बन गई है। तब उसका यह असंतोष विश्व-भर में फैलकर कितना क्षुद्र हो जाता है!...नहीं; कमलनयन ज़रा भी दुखी नहीं है। कौन कहता है कि वह अपने जीवन से असंतुष्ट है?.. तो भी, अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह इस जीवन से सतुष्ट है। परन्तु संतोष! वह तो इतिवाचक होता है, समाप्ति का सूत्रधार। उत्थानप्रेरक मन के लिए शांति और संतोष न चाहिये। उसे तो बढ़ना है, बढ़ते ही जाना है।"

कमलनयन एक अमिरती उठाकर खा रहा है। इसके बाद वह खीर-मोहन खायगा, फिर नमकीन। लोग कहा करते हैं—ईश्वर यहाँ है, वहाँ है। परन्तु कमलनयन अनुभव कर रहा है कि इस क्षण उसकी प्राप्ति मानो इस स्वाद में है। लेकिन नहीं, कौन जाने वह किसी क्षुधित कृषक के पास साग-रोटी पहुँचाने की प्रेरणा में उसकी नवल गृहिणी के मन में मुकुलित हो रहा हो! सोचते हुए उसका चिंताशील मुख किंचित् स्मित हो उठा।

आश्रय पा लेगा भागकर, विवश होकर या किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर। वह अपने चारों ओर देखने लगा। उसने देखा, चाय और मिठाइयाँ शकुन्तला के सामने भी आ गई हैं। नरेन्द्र पहले ही से चाय पीने में ऐसा संलग्न है और मौन है, जैसे उसे अब सुनना ही सुनना है, कहना कुछ है ही नहीं।

तब उत्तर में—'मैं..मैं तो एक ऊल-जलूल-सा आदमी हूँ। मैं क्या और मेरे दर्शन क्या!' कहते हुए कमलनयन खिले हुए पुष्प की भाँति बिखर पड़ा। अब खीरमोहन उसके हाथ में था और उसे उसके मुख में प्रवेश पाना था, पर वह एकाएक उसके हाथ से छूट पड़ा। हाथ से छूटने पर उसे जाना था तश्तरी पर, पर वह न उस पर गिरा, न टेबिल पर गिरकर स्थित हो सका; वरन् लुढ़कता हुआ फर्श पर आ पड़ा!

इसी समय नरेन्द्र के मुँह से निकल गया—अरे!

कमलनयन के मन में आया, वह कह दे—बस, मेरी भी ऐसी ही स्थिति है। पर इस क्षण वह कुछ कह नहीं सका।

शकुन्तला सोच रही थी—"जिस विचित्रता का परिचय इन्होंने अभी अपने इस उत्तर में दिया है, एक साहित्यिक से वैसी ही आशा की जा सकती है।" उसका ध्यान भङ्ग हो गया। वह बोली—"ध्यान से देखा जाय, तो सच्चे साहित्यिक हमें ऐसे ही मिलेंगे। विचित्रता ही तो उनकी प्रतिभा का यथार्थ प्रतिबिंब है। फिर चाहे वह जीवन की किसी भी दिशा में क्यों न हो।"

कमलनयन प्रशंसा सुनने का अभ्यासी नहीं है। उसे अपनी कमज़ोरियों का यथेष्ट ज्ञान है। जब कभी वह ऐसा संयोग पाता है, झट से वार्तालाप का प्रसंग बदल देता है। परन्तु उसे जान पड़ा, आज की स्थिति उसके लिए सर्वथा नवीन है। कंठ से स्पर्श करते हुए किसी तरल पदार्थ के पान करने में जैसी नवस्फूर्ति-सी अनुभूत होती है, शरीर-भर में विद्युद्धाराएँ जैसे फैल जाती हैं, उसे बोध हुआ, उसकी आत्मा को आज उसी प्रकार का अमृत मिल रहा है।

तब वह चुपचाप अपने कर्ण-रंध्रों से उसे पान करता गया, कुछ बोला नहीं।

और इसी क्षण नरेंद्र ने कमलनयन के मर्म को जैसे छू पाया हो। उसने कहा—"लो, तुम तो कहा करते थे—मुझे समझनेवालों की संख्या बहुत कम है। पर आज तुमने प्रत्यक्ष देख लिया, तुम्हारे छिपे हुए भक्त कितनी संख्या में हैं!...लेकिन यह कोरी बातचीत अब बंद होनी चाहिये। मेरा खयाल है, चाय तो ठंडी हो गई होगी।

कमलनयन ने शकुन्तला की ओर देखते हुए कहा—"आपके विचार सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई!" अब उसने झट से प्याले को मुँह से लगाकर ठंडी हो रही चाय को ही कंठ से उतार लिया; फिर शेष मिठाइयों की ओर देखा।

नरेन्द्र और शकुन्तला ने भी अपना-अपना भाग सम्हाला।

दो

रात के नौ बजे घूम-घामकर जब कमलनयन घर लौटा, तो उसने घर का वातावरण बिलकुल शांत पाया। उसके अग्रज कमलाकांत खाना खा चुके थे। उसकी भाभी अँगीठी में आग जलाये हाथ सेंकती उसी की प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। बच्चे सो गये थे। देवर को आया जान कर रसोई में ही बैठी हुई यमुना होले-होले उसे डाँटती हुई-सी कहने लगी—कब तक इस तरह बैठी रहा करूँ भैया! कितनी बार कहा—समय से भोजन कर लिया करो, फिर चाहे जब आया करो। सरदी के दिन ठहरे। लेकिन मेरी बात का तुम्हें कुछ ख्याल ही नहीं होता।

कपड़े उतारकर कमलनयन पैर धो रहा था। भाभी की बात सुनकर उनके यथार्थ कथन से भीतर-भीतर पराभूत होता हुआ धीरे-धीरे रसोई-घर में आकर पीढ़े पर बैठ गया। फिर उखड़ी हुई भाषा में, कुछ अन्यमनस्क

भाव से, कहने लगा—"एक पुराने मित्र मिल गये थे। उन्हीं के यहाँ जाना पड़ा। खाना थोड़ा परोसना, वहाँ से मिठाई खा आया हूँ।"

मुख पर स्मित आभा झलकाती हुई यमुना बोली—तो यह कहो कि माल काट आये हो! भूख तो रही न थी, जल्दी कौन आता! लेकिन जब तुम्हारे मित्र लोग ऐसे अमीर और बड़े आदमी हैं, तब भी तुम्हें नौकरी नहीं मिलती, यह क्या बात है?

थाली कमलनयन के सामने थी। रोटी का ग्रास तोड़ते हुए वह शांत भाव से बला।—इसके दो कारण हैं। एक तो इन लोगों के यहाँ मेरे योग्य कोई काम नहीं है। दूसरे, कोई भी समझदार व्यक्ति किसी मित्र को अपने यहाँ नौकर रखना पसंद नहीं करता।

कमलनयन के भीतर, उसके जीवन की अनिर्दिष्टता का, एक व्रण-सा उभड़ रहा है। जब कोई, उसकी बेकारी के सम्बन्ध से, उसे छू भी देता है, तो उसका अंतःकरण उस व्रण की टीस से, दर्द-से, छटपटाने-सा लगता है।

यमुना ने पूछ दिया—"यह क्या बात है?"

"बात यह है भाभी कि मित्र का पद आपस में बराबरी का होता है। और नौकरी में यह बात कैसे निभ सकती है भला? नौकर को तो अपनी स्वाधीनता दबाकर रखनी पड़ती है—हाँ-में-हाँ मिलाते रहना उसके लिए आवश्यक समझा जाता है। परन्तु मित्र इस दशा में कैसे, कितने दिन तक, रह सकता है? इसीलिए न मित्र को नौकर रखना लोग पसन्द करते हैं—न मित्र नौकरी की मर्यादा में बँधा हुआ रह ही सकता है। फिर एक बात यह भी है कि मित्र सच्चे मिलते कहाँ हैं। साधारण परिचय से उठ कर आपस का मिलना-जुलना, बैठना-उठना जहाँ कुछ अधिक हुआ, वहाँ लोग समझने लगते हैं, वह हमारा मित्र है। पर वास्तव में वे मित्र नहीं हुआ करते। जीवन भर में मुश्किल से कोई एक सच्चा मित्र मिलता है।

"हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो।" कहते हुए यमुना थोड़ा स्थिर होकर बोली—"परंतु अपने यहाँ न सही; दूसरों के यहाँ तो वे काम दिला ही सकते हैं।"

"हाँ, यह हो सकता है।" कहकर कमलनयन मन-ही-मन सोचने लगा—"यद्यपि इसकी संभावना नहीं है।"

यमुना ने अपने लिए खाना परोस लिया था। अब वह भी खा रही थी। वह खाना खाती जाती थी और सोचती जाती थी—"जिसको सदा प्रसन्न देखती आई, उदासीनता जिसके मुख पर कभी देख न पड़ती थी, आज वही कितना दुखी देख पड़ता है!

कमलनयन खाना तो खा रहा है, लेकिन उसके मानस में हलकंप मचा है। सच पूछो तो वह खाना नहीं खाता, वरन् खाना ही उसको खा रहा है। ऐसा भी कोई व्यक्ति होगा, जो पढ़ा-लिखा होने पर भी भाई के यहाँ मुफ्त की रोटियाँ तोड़ेगा, दिन भर आवारा की तरह जिधर चाहेगा, घूमता फिरेगा और भाई की सहायता करने के स्थान पर उसके सिर पर भार होकर रहेगा और इतना ही क्यों, ऐसा कौन होगा जो समय-असमय पहुँचकर भाभी की गार्हस्थ्य दिनचर्या में व्यतिक्रम उपस्थित करके व्यर्थ ही में उसे कष्ट देगा!

कमलनयन दो ही रोटियाँ खा सका। वह पानी पीकर उठने को तत्पर हुआ ही था कि, उसी समय यमुना ने उसके मर्म को पाकर टोक दिया। वह बोली—"अरे! मिठाई खाने पर क्या इतनी भी भूख नहीं रही कि चार फुलके तो खा लेते! अरे न, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हें मेरी कसम है, जो बिना पेट-भर खाये उठो। साग ज़रा-सा और ले लो।...खटाई भी थोड़ी-सी बची है। यह लो।

दोनों चीज़ें थाली में परोसती हुई यमुना कहने लगी—नौजवान होकर खाने में ऐसी कमज़ोरी दिखलाते हो! मैं जब तुम्हारी उमर की थी, तो ऐसे-ऐसे दस-बारह फुलके उड़ा जाती थी। और तुम्हारा अभी से यह हाल है'

कमलनयन का यह हाल क्यों है, यह क्या उसकी भाभी को बतलाने की बात है! फिर भी भाभी का सहज स्नेह से भरा आग्रह तथा साग और खटाई थाली में पाकर वह फिर तत्काल उठ न सका।

यमुना बोली--सोचा था, तुम पढ़-लिख जाओगे, तो एक दिन मेरे घर का यह आँगन पायल और झाँझ की झनकार से गूँज उठेगा। एक हँसमुख देवरानी आ जायगी और तुम्हारा इस तरह इतनी रात तक बाहर रहना भी बंद हो जायगा। परन्तु जब तक तुम कुछ आमदनी करने का ज़रिया नहीं कर लेते, तब तक यह सब कैसे हो सकता है!

उदास मन से कमलनयन कहने लगा – ब्याह-वाह अब मैं नहीं करूँगा भाभी। मेरे जीवन का यह अट्ठाइसवाँ वर्ष समाप्त हो रहा है। आजकल ज़िंदगी का कुछ ठीक नहीं है। कौन बहुत दिन जीना है। अधिक से अधिक दस-पंद्रह वर्ष! सो, जैसे इतने दिन भैया के चरणों के पास पड़े हुए हँसी ख़ुशी से व्यतीत हो गये, वैसे ही शेष दिन भी व्यतीत हो जायँगे!

—"अः इसका जीवन कैसा निराश है? जैसे उसमें कोई साध ही न हो! कहता है—"भैया के चरणों के पास पड़े हुए···" और ऐसे देवर से मैं नौकरी के लिए कहती हूँ। छिः मेरा मन भी कैसा ओछा हो गया है!" सोचती हुई यमुना बोली--आज कही सो कही, अब फिर कभी ऐसी बातें मुँह से न निकालना। मैं आज उनसे कहूँगी—न हो, एक छोटी-मोटी कपड़े की दूकान ही तुम्हें करा दें। इस बेकारी में तो तुम्हारा बदन ही घुला जा रहा है।···बस, मैंने तै कर लिया। मैं ऐसा ही करूँगी!

"परन्तु भाभी, मुझसे दुकान कैसे चलेगी? दूकानदारी ऐसी कोई आसान चीज़ तो है नहीं भाभी, मुझे ऐसे काम में न डालो, जिसे मैं ठीक तरह से न कर सकूँ।"

"चलो हटो, मुझे तुम्हारी यही बातें तो पसंद नहीं आतीं। दूकानदारी में क्या लगता है? मेरे मामा के यहाँ बजाजी ही होती है। मैं छोटी थी, तब उनकी दूकान पर कभी-कभी जाती थी। ग्राहक आया नहीं कि मामा ने उसे बड़े आदर के साथ बैठाया। उसके बैठते ही कहा—अच्छी तरह से इत-मीनान के साथ बैठ जाइये। फिर पूछा—क्या चीज़ दिखलाऊँ? जो चीज़ उन्होंने माँगी, उसकी एक-दो-तीन नहीं, दस-पंद्रह क़िस्में उसके सामने रख दीं। पान लेने के लिए नौकर को अलग भेज दिया। अब ग्राहक कपड़े का

दाम पूछता जाता है और मामाजी दाम के साथ उस कपड़े की तारीफ़ करते जाते हैं। साथ में यह भी बतलाते जाते हैं—'दामों में फ़रक़ पड़े वापस कर जाइये, दूसरा ले जाइये। सिर्फ़ कपड़े की तह न बिगड़नी चाहि तब तक पान आ जाते हैं। ग्राहक कोई-न-कोई चीज़ पसंद ही कर लेता। पढ़े-लिखे होकर ऐसी बातें करते हो, जैसे कुछ जानते ही नहीं।"

"जानता हूँ भाभी, सभी कुछ जानता हूँ। लेकिन इस दूकानदारी ठगी कितनी है। सुबह से लेकर शाम तक सारी बातें झूठ ही तो बोलनी पड़ हैं। तुम बजाजी की बातें करती हो। अच्छा, बजाजी को ही लो। उसमें बि चाहे बीस रुपये रोज़ की भी न हो, और लोग मुनाफ़ा चाहे दो-ढाई आने रु से कम न लगाते हों, पर बताना यही पड़ेगा कि "अब इस रोज़गार में ल ही क्या रह गया है! लाभ के दिन तो निकल गये। अब तो पैसा-रुपया ल की दूकानदारी रह गयी है। इतनी ही गनीमत है कि आपकी दूकान पुरानी हज़ारों बँधे हुए ग्राहक हैं। पाई-पाई भी मिलेगी, तो खाने भर को, अ लोगों की कृपा से बहुत है।" दूकान में एक ओर लिख रक्खा है; ' बात'—और दूसरी ओर 'साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।' अ ऐसे ही रँगे-सियार लोग चार-चार आना-रुपया मुनाफ़ा लगाकर दूकानद करते हैं। अब तुम्हीं बताओ भाभी, यह काम मुझसे कैसे हो सकेगा!

यमुना बोली—हाँ, यह बात ज़रूर है। पर रोज़गार में बात बनाना इ नहीं समझा जाता। यह कोई धर्म-शास्त्र नहीं है। यह तो दूसरे शब्दों में दं पेंच से भरी हुई (रोज़गार की) नीति है।

"और यही मुझसे निभ न सकेगी।" कहकर कमलनयन पानी पी उठ खड़ा हुआ। वह खाना खा चुका था।

तीन

आज रात को एक ओर जब नरेन्द्र बाबू एक मुक़दमे के काग़ज़-पत्र देखने में लग गये, तब दूसरी ओर शकुंतला ने उस की सन्, १८ की पुरानी डायरी फिर देखनी शुरू कर दी।

१३ जनवरी—सवेरे उठने पर भी आज घूमने न जा सका। चित्त ठिकाने नहीं रहा। उससे जल्दी-से-जल्दी कैसे भेंट हो, यही सोचता रहा। सोचता हूँ कि आगरे चला जाऊँ। वहाँ दो-चार दिन यों ही ठहरा रहूँ। वहाँ के साहित्यिक जंतुओं से मिलकर किसी एक प्रतिभाशाली कवि को बुलाकर उसका कविता-पाठ करवाऊँ। कुछ संगीतज्ञों को बुला कर संगीत का भी स्वाद लूँ। ऐसे अवसर पर तो वह ज़रूर आयेगी। तब और न सही, तो कम-से-कम उसे देख तो सकूँगा। किसी हँसोड़ कवि को भी बुलाऊँगा। वह अपनी रचनाओं से उपस्थित जनता को लोट-पोट कर देगा। तब क्या वह भी न हँस देगी? और तब मैं उसके उस कल्लोल-हास को देखकर कृतार्थ हो जाऊँगा!

बस, इतना ही चाहता हूँ।

१४ जनवरी—कल की यात्रा में थक बहुत गया। पैदल चलने पर ही थकावट नहीं आती एकदम से बैठे-बैठे या लेटे रहने पर भी थकावट आती है। इस यात्रा में भी एक तितली से भेंट हो गई। मैं उसे तितली ही कहूँगा। उसकी बातचीत में बड़ी चपलता थी। अभी उसके यौवन का मद चढ़ाव पर था। पर उसके साथ बातचीत बहुत थोड़ी कर सका। पीछे से कुछ घृणा-सी मेरे मन पर उतर आयी। भोली सलज्ज भावना का उसमें अभाव था। जान पड़ा, यह तो निरी वेश्या है। अब फिर मेरा ध्यान अपनी 'शकुन' की ओर खिंच गया। कानपुर स्टेशन आ गया। वहाँ चाय पी। सेब खाये। सेब मुझे बहुत पसंद आये। ये सेब

किसी की याद दिलाने में मेरी सहायता सदा से करते आये हैं। आकार, रंग और रस इनका बड़ा रुचिकर होता है।...आगरा पहुँचने पर कुँवरजी के यहाँ ठहरा। प्रारंभ में नींद खूब आयी पर तीन बजे जो आँख खुल गयी, तो फिर सो नहीं सका।

१५ जनवरी—आज सवेरे पैदल घूमने गया था। चला था यह सोचकर कि सिविल लाइन की ओर जाऊँगा, लेकिन पहुँच गया ताजमहल की ओर। इस इमारत को मैं कई बार देख चुका हूँ। फिर भी इसे देखने की इच्छा कभी भरती नहीं। यद्यपि शताब्दियाँ बीत गयी। कोई कहीं देखने को नहीं रहा। तो भी ऐसा जान पड़ता है, जैसे शाहजहाँ और मुमताज़ बेगम की समाधियों के भीतर इस दम्पति की आत्माएँ एक दूसरे से हँस-बोल लेती हैं। किसी एक की तबियत ज़ुकाम से कुछ नासाज़ है। दूसरा कहता है—आज दरबार करने न जाऊँगा। तुम्हारा ही गोशा-नशीं होकर रहूँगा। शतरंज खेलोगी?

मुमताज़ कहती है—हुज़ूर ऐसा न करें, रैय्यत का जानो-माल, उसका आराम और उसकी तकलीफ़ात जहाँपनाह के एक-एक लहमे पर मुनहसर है। मेरी तबियत ज़रा भी नासाज़ नहीं है। मैं अपना कुल काम रोज़मर्रा की तरह ही करूँगी। कोई फ़र्क़ नहीं आयेगा, तब हुज़ूर ही क्यों ऐसा करें! हाँ, अपना काम ख़तम कर लें। तब इधर आने का मौक़ा पायें, तो ज़रूर अपनी तशरीफ़आवरी का जलवा दिखायें। यक़ीनन निहायत मशकूर-व-मम-नून हूँगी।

"तो चलता हूँ मुमताज" कहते हुए उसके कोमल करपल्लव का चुम्ब लेकर शाहजहाँ चला जाता है।

—ओह! यह कैसी विचित्र बात है कि इसी नगर में आज मेरी मुमताज है। पर मैं प्रकट रूप से उससे मिल नहीं सकता।

शाम को उन साहित्यिक बंधुओं से मिला। साहित्यिक बैठक की ओर दिलचस्पी नज़र नहीं आती। तो भी कोशिश कर रहा हूँ।

१६ जनवरी—पिछली रात को देर तक सो नहीं सका था। कुँव

से बड़ी रात तक बात-चीत होती रही। कहानियों के बड़े शौक़ीन हैं वे। मैंने दो-तीन कहानियाँ उनको सुनाईं। तारीफ़ के पुल बांध दिये। बोले—वाह ! कहानियों की इतनी अच्छी परख रखते हो, यह मुझे न मालूम था। इसी सिलसिले में कह बैठे—"लेकिन तुमने यह नहीं बतलाया, इस बार तुम्हारा आना कैसे हुआ। 'योंही घूमने चले आये'। अच्छा तो यह कविता-पाठ और संगीत-साधना की सनक कैसे सिर पर सवार हो गई है।

हम अपनी कमज़ोरियों के साथ निरंतर खिलवाड़ किया करते हैं। समझते हैं—हमारे भीतर की भावना-तरंगें तट तक आ-आकर जब लौट जाती हैं, तब किसी की दृष्टि उन पर जाती नहीं। समझते हैं हमारे अंतःकरण में जो विचार उत्थित हो-होकर हमारी कार्य-गति के हिंडोलों में झूलते और चक्कर मारते हैं, उनके अंतस्तल तक किसी की अवगाहक किरण कभी क्यों पहुँचेगी ! परंतु हमारा यह सोचना कितना व्यर्थ होता है ! कुँवर साहब ने आज जो प्रश्न मुझसे कर दिया है, उसका संकेत कितना लक्ष्य-वेधी है !

मैंने उत्तर में कह दिया—यों ही मैंने सोचा, थोड़ा बहुत मनोरंजन ही हो जायगा। विविध प्रकार की विनोदमयी आकृतियों के उल्लसित आलाप मुझे बहुत प्रिय है। कुछ क्षणों के लिए जब कभी ऐसा संयोग मैं पा जाता हूँ, तब जान पड़ने लगता है, जैसे मेरी सुप्त शक्तियाँ जागरण की प्राणमयी स्फूर्ति प्राप्त कर रही हैं।"

"उनकी डायरी के ये पृष्ठ उनकी आत्मा के सच्चे प्रतिबिंब हैं।"—शकुंतला सोचने लगी—तो, अपनी पीड़ा को ये इस तरह से दबा-दबा कर रखते थे। मिलन की आशा में ये इस तरह के साहित्यिक समारोहों का आयोजन कर उस उपस्थित समाज में किसी की आँखों को खोजते थे। और तब मैं......! उफ़ ! मैं एक दूसरे ही ताने-बाने में उलझा दी गई थी। इन्होंने उस दिन कहा भी था—'दुष्यंत से कम अंतर्पीड़ा मैंने तुम्हें प्राप्त करने में नहीं पाई।' आह ! मैं नहीं जानती थी, किसी का आत्मा में मैं इतना स्थान लिये बैठी हूँ; नहीं तो मैं तो संसार के समस्त बंधनों को

तोड़ फोड़ककर तुरंत ही आ मिलती। मैंने कभी सोचा न था, पुरुष भी किसी को कभी इस हद तक चाह सकता है! नारी की प्यास कैसी होती है, मैं जब उसकी व्याख्या करने बैठती हूँ, तब मुझे ऐसा अनुभव होने लगता है जैसे मैं भी कम स्वार्थी नहीं हूँ। मैं चाहती हूँ, मोटर हो, महल हो, दास दासियाँ हों—और रुपया! रुपया इतना हो कि कभी अभाव का बोध ही न हो। लेकिन मैं अपने आपसे ही यह पूछना चाहती हूँ, नारी को क्या यह यथार्थ रूप रेखा है! दाम्पत्य-जीवन के यथार्थ सुख का अनुभव क्या वे ही दम्पति करते हैं जिन्हें खाने-पहनने की किसी प्रकार की कमी नहीं है! किंतु नारी का सुख तो ऐसा क्षुद्र नहीं है। वह तो पति के सुख में सुख और दुख में दुख मानती है। जुआर की डेढ़-दो रोटियाँ ही जिसे प्राप्त हैं, और उन्हीं में संतोष करके जो दम्पति सुख की नींद सोते हैं उनके जीवन की प्यास क्या अपूर्ण ही रह जाती है! तब नारी-जीवन का चरम सुख सम्पन्नता में कहां रहा! वह तो संतोष की रोटी, झोपड़ी का निवास और पति के हृदय-मंदिर का एक कोना ही चाहती है।

रात के पौने दस बजे थे। शकुंतला उठकर नरेंद्र के कमरे की ओर चल दी। आज उसका मानस बहुत शांत था। वह राजहंसिनी आज नरेंद्र के पास जाती हुई बहुत प्रसन्न थी। मंथर गति से मखमली कामदार चप्पल चटकाती हुई वह सोचती जाती थी—उनसे कहूँगी, एक कवि सम्मेलन क्यों नहीं कर डालते। तुम्हें तो वह बहुत प्रिय रहा है।

चार

नरेंद्र उस समय सोच रहा था—आज हम जा कहां रहे हैं! हमारे जीवन की बात बात में कपटाचार समाया हुआ है। हमारे मन को मिथ्या दम्भ ने इतना क्षुद्र, असंगत, महत्वाकांक्षाओं ने इतना निराश और पाखंडपूर्ण तथा बाह्य ज्ञान ने इतना पतित बना डाला है कि आज हमारे यथार्थ रूप की स्मृतिमात्र रह गई है। जीवन के सादेपन की ओर

हमारी दृष्टि ही नहीं है। दूसरों को धोखा देकर, उन्हें ठगकर, महत्व और शक्ति का संचय करने की यह आँधी हमारी अंतर्दृष्टि को कितना धुँधला बना रही है, इसकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हाय! हमारे जीवन की यह कैसी अधोगति है!

नरेंद्र मुंसिफ़ है। उसे रोज़ाना दीवानी मुक़दमें फ़ैसला करने पड़ते हैं। वह कोर्ट में ठीक दस बजे पहुँच जाता है। साढ़े दस बजे वादी और प्रतिवादी उसके सामने आ जाते हैं। बीच में टिफ़िन की छुट्टी लेने का वह आदी नहीं। चार-पाँच बजे तक वह खूब कसकर मेहनत करता है। वह प्रतिदिन कम-से-कम बीस-बाइस मुक़दमें फ़ैसला कर देता है। इसलिए उसका एक-एक मिनट बँटा रहता है। दस मिनट में ही दो-चार प्रश्नोत्तर करके वह अभियोग की तलछट तक पहुँच जाता है। लोग उसके न्याय पर संदेह करते हैं। लोग उसकी प्रशंसा भी करते हैं; और लोगों को उसकी तत्कालीन निर्णय-बुद्धि पर आश्चर्य भी होता है; परन्तु नरेन्द्र किस धातु का बना है, इसका पता बहुत कम लोगों को है।

नरेन्द्र के हाथ में इस समय एक मुक़दमे की मिसिल है। उसके एक-एक काग़ज़ को वह बहुत ध्यान से देख रहा है। लेकिन आज किसी निर्णय पर पहुँचते हुए उसकी आत्मा एक संशय में पड़ जाती है।

इसी समय शकुंतला उसके निकट आ पहुँची। उसे देखते ही नरेंद्र उसके शशि-मुख पर एक दृष्टि डालकर कहने लगा—बिल्कुल ठीक समय पर तुम आई। बस, इस समय तुम्हारी ही कमी थी। शायद तुम मेरी समस्या को ठीक तरह से हल कर सको। मैं तो किसी निर्णय पर पहुँच नहीं पाता।

"बात क्या है, पहले यह तो बताओ। ज़रा सोच-समझ लूँ, अपना मेहनताना तै कर लूँ, तो फिर आगे बढ़ूँ।" कहते हुए शकुंतला के कमल बदन की सस्मित आभा उद्दीप्त हो उठी। उसके नयन-कटोरों में भरी वारुणी नरेन्द्र के अंतस्तल तक पहुँचकर उसे झकोरने लगी।

नरेन्द्र बोला—"हाँ हाँ, मेहनताना तो मिलेगा ही, नज़राना भी थोड़ा सा मिलेगा।" और हँसने लगा।

"अच्छी बात है। तो अब फ़रमाइये।" शकुंतला ने कुरसी पर बैठते हुए कहा।

नरेंद्र अभियोग की सारी कथा इस प्रकार कह गया—बीस जनवरी उन्नीस सौ इकतीस की बात है। बाबू शारदाविनोद के विवाह के उपलक्ष्य में, दस तोले की तीन चीज़ें, उनके अग्रज शांति-स्वरूप ने त्रिवेणी स्वर्णकार के यहाँ बनवाई थीं। विवाह के तीसरे वर्ष, सन् उन्नीस सौ तेंतीस के प्रारम्भ में शारदाविनोद को अपने भाई से अलग हो जाना पड़ा। कई महीने तक कहीं काम नहीं लगा, तो उन्हें अपनी गृहिणी के यही तीनों आभूषण आनंदीप्रसाद महाजन के यहाँ सवा सौ रुपये पर गिरवी रख देने पड़े। सूद डेढ़ रुपया सैकड़ा ठहरा था। शारदाविनोद बेकारी के कारण ढाई वर्ष तक उन आभूषणों को जब छुड़ा न सका, तो इसी अवधि में कुल रुपये असल-मय-सूद के एक-सौ-नवासी साढ़े-बारह आने कर्ज़ उन आभूषणों पर हो गया। महाजन ने शारदाविनोद को सूचित किया कि आप रुपया देकर इन आभूषणों को छुड़ा ले जाइये, अन्यथा मैं इनको बेच डालने के लिए मजबूर होऊँगा। शारदाविनोद ने उत्तर दिया कि अभी इनको न बेचिये, मैं जल्दी ही उन्हें छुड़ा लूँगा। फिर छ महीने तक शारदाविनोद ने कोई ख़बर न ली। इसी बीच में महाजन ने आभूषण बेच डाले। परन्तु इधर शारदाविनोद को साठ रुपये मासिक वेतन की नौकरी मिल गई थी। जब वह रुपये लेकर आभूषण छुड़ाने गया, तो उसे पता चला कि आभूषण तो बेच डाले गये। इस पर शारदाविनोद ने जब हिसाब माँगा, तो उसे बतलाया गया कि तीन बरस में कुल रुपया असल-मय-सूद के दो सौ पाँच रु० सात आने हो गया है। सोना खोटा था, इससे दो सौ ही में बिका गया। इस प्रकार पाँच रुपये सात आने का उसे घाटा रहा।

शारदाविनोद का कहना है कि सोना बिल्कुल असली था और जिस समय

आभूषण बेचे गये हैं, उस समय भाव तैंतिस रुपया का था। इस हिसाब से एक सौ चौबीस रुपये नौ आने लेने का वह अधिकारी है। उसे यह भी शिकायत है कि वे आभूषण उसकी पत्नी के विवाह के उपलक्ष्य में बनाये गये थे। उन्हें वह जिस तरह भी हो सकता, रखना ही चाहता था। आभूषण बेचते वक्त अगर उसे सूचित कर दिया गया होता, तो जैसे भी हो सकता, उसी समय वह उन्हें अवश्य छुड़ा लेता; क्योंकि उस समय उसकी नौकरी लग गई थी।

"तो इसमें वादी शारदाविनोद है?" शकुंतला ने पूछा।

नरेन्द्र ने कहा—हाँ, शारदाविनोद।

"सोना कैसा था, इस विषय में गवाहों का क्या मत है?"

"इधर दलाल का मत है कि सोना खोटा था। उधर सुनार, जिसने उन्हें बनाया था, कहता है कि सोना असल था।"

"वकीलों की बहस से क्या नतीजा निकला?"

"कोई बिगड़ नहीं सका।"

शकुंतला बोली—मैं मिसिल देखना चाहती हूँ।

नरेन्द्र ने मिसिल दिखला दी।

थोड़ी देर में कागज़ात देखकर शकुंतला ने कहा—डिगरी हो जानी चाहिये।

नरेन्द्र ने पूछा—क्यों?

"क्योंकि जान पड़ता है, दलाल महाजन से मिला हुआ है। इसके सिवा महाजन ने शारदाविनोद के साथ अन्याय किया है। जब उसने जवाब दे दिया था कि जल्दी ही मैं उन आभूषणों को छुड़ा ले जाऊँगा, तब उसके खामोश रह जाने का यह अर्थ होता है कि उसने शारदाविनोद की प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। परन्तु फिर उसने अपने इस तत्कालीन निश्चय का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा।"

"लेकिन शारदाविनोद ने भी अपनी बात का निर्वाह नहीं किया। जैसे उसने लिखा था कि वह उन्हें जल्दी ही छुड़ा ले जायगा, वैसे

ही उसको चाहिए था कि वह इसमें जल्दी करता। पर वह तो छै मास तक कान में तेल डाले रहा।"

"लेकिन हुज़ूर यह भूल रहे हैं कि जिसकी संपत्ति जाती है, जिसका मालोज़र लुटता है, वह कभी बेख़बर नहीं रहता। फिर रुपया ऐसा पदार्थ नहीं है, जो ज़रूरत पड़ने पर फ़ौरन पैदा कर लिया जा सके, उसे तो थोड़ा-थोड़ा करके इकट्ठा करना होता है। नोटिस पाने के छः महीने बाद भी अगर वह चीज़ छुड़ा लाने के लिए महाजन के पास पहुँचता है, तो भी वह बेख़बर साबित नहीं होता।"

"लेकिन सोना असली था, इसको तुम किस तरह सच मानती हो!"

"क्योंकि शारदाविनोद के विवाह के लिए ये चीज़ें बनवाई गई थीं। उस वक्त वह अपने भाई के साथ रहता था। उसके भाई की माली हालत तब भी अच्छी थी, और मेरा ख़याल है, अब भी अच्छी होनी चाहिये। ख़ूब जाँचकर उस वक्त ये चीज़ें बनवाई गई होंगी। ऐसी चीज़ें गृहस्थ घरों में रोज़ाना नहीं बना करतीं। फिर जो सोनार दो-आना रुपया बनवाई लेता है, उसे माल को खोटा कर डालने का लालच नहीं रहता। मज़दूरी कम लेनेवाले सुनार ही खोटा माल अधिकतर दिया करते हैं।"

"तुम्हारी बातों से पक्षपात झलकता है। तुम शारदाविनोद का पक्ष इसलिए ले रही हो कि उसकी माँ के गहने गये हैं। परन्तु क़ानून उसे अपराधी समझता है। तीन बरस तक माँ के गहने गिरवी पड़े रहते हैं; और वह कुछ कर नहीं पाता! इससे ज़्यादा लापरवाही उसकी ओर से और क्या हो सकती है! तुम यह भी भूल रही हो कि महाजन भी आख़िर समाज के एक अंग हैं। वे सूदख़ोर हैं, दुनियाँ उन्हें सूदख़ोर कहती और उनसे घृणा करती है, परन्तु आख़िर उनके इस पेशे ने कितने आदमियों के मान, निर्धनों और भले आदमियों की इज़्ज़त क़ायम रखी है। अगर वे न हों, तो कितनों को अपने आत्मीय संबंधियों के लिए कफ़न तक नसीब न हो—उनका अन्तिम संस्कार करने के लिए लकड़ी मयस्सर न हो सके। समाज में इनकी उपयोगिता से इनकार असंभव है। क़ानून की दुनिया में एक महत्त्व

के लिए भी सहानुभूति की उतनी ही गुंजाइश है, जितनी महाजन के लिए। उसे दोनों को एक नज़र से देखना होता है; क्योंकि क़ानून ही से देश में शांति और व्यवस्था स्थिर रहती है।"

"हुजूर के हाथ में क़लम है और दिल व दिमाग़ में सरकार की दी हुई ताक़त। हुजूर फ़ैसला चाहे जो दे सकते हैं। पर हुजूर यह बिल्कुल भूल रहे हैं कि दुनियाँ में सबसे ज्यादा लूट इन महाजनों के ज़रिये से ही होती है। यही वह शै है, जिसकी बदौलत गाँव उजड़ जाते हैं, महलों के बाशिंदे झोपड़ियों में पनाह पाते हैं। इनके चंगुल में फँसा हुआ आदमी ताबे-ज़िंदगी उनसे छुटकारा नहीं पाता। हुजूर ने इस केस में ही देख लिया, असल रुपया सिर्फ़ १२५) दिया गया था, लेकिन तीन ही साल में उसका सूद ८०) हो गया। अगर यही रक़म चार साल तक चल जाती, तो सूद और असल रुपया बराबर हो जाता। हुजूर ने अभी फ़रमाया है कि अगर महाजन ना हों, तो वक़्त-ज़रूरत पर लोगों को कफ़न और जलाने के लिए लकड़ी तक नसीब न हो। हुजूर बहुत बजा फ़रमाते हैं। लेकिन मैं सिर्फ़ एक सवाल का जवाब चाहती हूँ। और वह यह है कि आख़िर इन महाजनों का इतना रुतबा बढ़ाया किसने है? मौजूदा सरकार ही ने न? अगर हमारी अपनी जनता की सरकार होती, तो रियाआ की इन तकलीफ़ात को कुछ तो महसूस करती। तब क्या यह मुमकिन नहीं हो सकता था कि सरकार की ओर से हर शहर व क़स्बे में ऐसी बैंकें होतीं जो नाम-मात्र के, बहुत मामूली, सूद पर ज़ेवरात लेकर रुपया दे सकतीं। क़ानून और अमल की दुहाई बात-बात में देनेवाली सरकार···।"

इसी समय नरेंद्र बोल उठा—"अब तुम विषय से बाहर जा रही हो शकुन। तुम यह भूल रही हो कि हमलोग इस वक्त बतौर अदालत बैठे हुए एक पेचीदा मामले पर बहस कर रहे हैं। पर तुम क़ानून की बातें करती-करती आ गई एक दम से राजनीति के प्लेटफ़ार्म पर। बहस तो मौजूदा क़ानून की रू से होनी चाहिये। सरकार हमारी होती तो हम क्या करते, यह तो बात ही दूसरी है। मालूम होता है, अब तुम्हारे पास वादी

के पक्ष की कोई और दलील नहीं रह गई है। मानो तुम्हारा तूणीर खाली हो गया है।

शकुंतला ने थोड़ा मुसकराकर, मानो गुलाबी कपोलों में जैसे अमृतकुंड की रचना करते और नयन-कटोरों में भरे हलाहल को इधर-उधर छलकाते हुए, कहा—"और आपकी जेबों में महाजन की ओर से कुछ गरमाहट उत्पन्न हो गई है।"

नरेन्द्र अट्टहास करने लगा। वह बोला—यह खूब रही!...अच्छा, तो तुम्हारी राय में डिगरी हो जानी चाहिये।

"अवश्य" शकुंतला ने कहा।

"चलो, यह उलझन तो मिटी।" नरेन्द्र ने संतोष की साँस लेते हुए कह दिया।

"तो अब लाओ मेरा मेहनताना" कहते हुए शकुंतला की दंतमुक्ताएँ खिल पड़ीं।

नरेन्द्र ने पूछा—बोलो क्या चाहती हो?

"अगले रविवार को एक कवि-सम्मेलन करना पड़ेगा। उसमें जो कविताएँ पढ़ी जायँगी, उनमें से प्रथम, द्वितीय और तृतीय को इक्यावन इक्तीस और इक्कीस रुपये के पारितोषिक देने होंगे।

"अच्छी बात है। मंज़ूर।"

शकुंतला प्रफुल्ल मन से पियानो बजाने बैठ गई।

पाँच

सच पूछो तो दुनिया बच्चों की ही है। हम जो कुछ करते हैं, अपने बच्चों के लिए; अपने लिए तो हम बहुत कुछ उसी समय तक कर चुके होते हैं, जब बच्चे हमारे घर के आँगन में इधर-से-उधर ठुमकने-डोलने लगते हैं। इसके पश्चात् भी हमारा भावी कार्य-क्रम इन्हीं के लिए मुड़ जाता है। ये बच्चे एक प्रकार के खिलौने हैं। इन्हीं खिलौनों से खेलते

हैं और हम बच्चों से खेलते हैं । हम जितना बच्चों को चाहते हैं, बच्चे उससे कम अपने खिलौनों को नहीं चाहते । बच्चे चाहते हैं, वे खिलौनों से सदा खेला करें और हम चाहते हैं, हमारे ये खिलौने सदा हमको खिलाते रहें । यहाँ तक तो हमारा और बच्चों का भाव-साम्य रहता है । परन्तु जहाँ हम बच्चों को देख-देखकर यह आशा करने लगते हैं कि जब यह बड़ा होगा, तो हमको यह सुख देगा, इस प्रकार हमारी सेवा करेगा, वहीं हम माया में पड़ जाते हैं।

एक बात और है। जब हम यह संसार बहुत कुछ भोग चुकते हैं तब हमारे मन में विचारों का चक्र चलने लगता है। एक बार जो हम अपने अतीत के पृष्ठ उलटते हैं तो यह कामना हमारे भीतर उमड़ आती है कि काश हम अब फिर अपने उसी बचपन को प्राप्त कर सकते ! किन्तु तब तो हम दूसरों की गोद के खिलौने थे।

तो क्या हम स्वयं भी दूसरों के खिलौने रहना चाहते हैं !

ऐसी बात नहीं है। हम बच्चे होकर अपने माता-पिता के, भाई-भौजाई के खिलौने रहे हैं, यह बात तो हम अब जान सके हैं। उस समय हमें इस बात का ज्ञान कब था ? इसके सिवा हम यह भी जान गये हैं कि उस समय हमारा संसार असीम था और उसमें हमारी गति असीम थी। हम जिसकी कामना करते थे, वह अनायास पूरी हो जाती थी । हम जो चाहते थे, वही करते थे। वाह ! हम कितने स्वतन्त्र थे ! किन्तु हमारे इस सोचने में भी अतिशयोक्ति है। वास्तव में हम स्वतन्त्र नहीं थे । हाँ, यह बात अवश्य थी कि हमारी इच्छाओं का मूल्य होता था ।

तो हम यही न चाहते हैं कि फिर हमारा वैसा ही संसार बन जाय और हमारी इच्छाओं का वैसा ही मूल्य हो !

परन्तु ऐसा कैसे संभव हो सकता है ? तब हमारी इच्छाएँ हमारे अभिभावकों पर निर्भर रहती थीं । वे शक्तिभर उनकी पूर्ति करते थे। आज जब हम स्वतन्त्र हैं, तब अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए हमको स्वयं उद्योगशील होना पड़ेगा। किन्तु इतने से ही क्या हम संतुष्ट हो जायँगे ?

अगर यह बात भी हो जाय, हम उद्योगशील होकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति भी कर लें, तो भी क्या हम फिर अपना बचपन न चाहेंगे?

क्यों न चाहेंगे? इतना सब होने पर भी हमारे बचपन की ऐसी अनेक बातें छूट जाती हैं, जिनकी पूर्ति अब हम इस जीवन में नहीं कर सकेंगे। वैसा भोला, अबोध और चटुल मन हम कहाँ से पायेंगे? चिड़िया उड़ गई। बिल्ली कूद गई। वह अपने बच्चों को खिला रही है। बकरी का बच्चा फुदक रहा है। फौव्वारा बूंदजाल बिखेर रहा है। पार्क में हरी घास बिछी है। उसपर हम खूब दौड़ते हैं, लोट जाते हैं या गिर पड़ते हैं। मोटर आई और भों-भों करने लगी। खेत में कोई दो सफ़ेद-पोश जानवर डटे हुए हैं। उनकी लंबी लंबी कैसी चमकीली गर्दन है और चोंच भी कैसी सीधी, पैनी और लम्बी है! खेत पानी से भरा हुआ है। हम गाड़ी पर जा रहे हैं। हमारी उँगली उठ गई। अम्मा की ओर देखकर उस ओर अँगुली उठा दी। अम्मा को हमारी जिज्ञासा का बोध हो गया। उसने कह दिया—हाँ भैया, वे सारस हैं चुन-चुनकर कीड़े खा रहे हैं।

हमारा समाधान हो जाता है। हम भी कह देते हैं—छारछ!

और अम्मा आनन्द-विभोर हो जाती है! गोद में लेकर वह हमें चूम लेती है और कह उठती है—'हाँ भैया, छारछ!'

हम पूछते हैं, क्या हमारी वे सब [illegible] फिर साकार हो सकती हैं!

[illegible] अपने साथियों को [illegible] में ले आया है। संध्या का समय है। पास के निकटवर्ती गृहस्थों के अन्य लोग भी आये हैं। कुछ बच्चे भी हैं। मुन्नू-चुन्नू भी उन्हीं में मिल गये हैं।

पार्क एकान्तमय है। अब विचार करने के लिए एकान्तप्रिय होना [illegible] हो गया है, तब ऐसे ही एकान्त स्थान की उपयोगिता विशेष होती है। [illegible] रहता है। [illegible] में कभी-कभी [illegible] भी हो जाता है। [illegible] हैं, [illegible] [illegible] हो [illegible] [illegible], हो [illegible]! [illegible] है [illegible] रहता है! [illegible] में तो

अपनापन घुस गया है। समष्टि का भाव ही जैसे लोप होता जा रहा है। प्रश्न यह है कि क्षुद्रता के पंक और स्वार्थ-संघर्ष के दलदल में, हमारे देश की समृद्धि की हरियाली कैसे बढ़े और कैसे लहलहाये!

किन्तु इसी क्षण कमलनयन अपनी ही दृष्टि में क्षुद्र हो पड़ा...।—" पर यह सब सोचने का उसे अधिकार क्या है? जो स्वतः स्थिर नहीं है, जिसका स्वतः कोई आधार नहीं है, जो अपने आप ही अव्यवस्थित, बेकार, साधन-हीन किंवा पंगु है, वह भी पहले अपने को न देखकर विश्व को देखने का दम भरता है।—यह कैसी अमर्यादित महत्वाकांक्षा है!"

तब उसके मन में आया—"अब मैं करूँ तो क्या करूँ - जाऊँ तो कहाँ जाऊँ! उसने यह भी अनुभव किया कि उसकी आत्मग्लानि का भाव यदि इसी प्रकार बढ़ता गया तो उसकी मानवता मर जायगी। फिर वह रह क्या जायगा?"

कमलनयन इस समय चौक में था। वहीं खड़े-खड़े उसने देखा—चर्म-चक्षुओं से नहीं, हृदय के अन्तर्पट खोलकर—यही बाज़ार है। इसी को बाज़ार कहते हैं। यहीं सौदे होते हैं। यही वह दुनियाँ है, जहाँ वस्तुओं का बाह्य रूप देखकर उनका मूल्य आँका जाता है। यही वह स्थल है, जहाँ मिट्टी भी सोने के मूल्य बिकती है और सोना भी जहाँ मिट्टी कर दिया जाता है, यहीं वे अट्टालिकाएँ हैं, जहाँ गरीबों का ख़ून सूद के रूप में शोषण किया जाता है और यहीं हमारे राष्ट्रीय-जीवन का सच्चा चित्र देखने को मिल रहा है। गिनती की दो-चार दूकानों को छोड़कर अवशेष सभी दूकानों में आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली जितनी भी चीज़ें देखने को मिल रही हैं, सभी विदेशी हैं!

"किन्तु मैं यह सब क्या सोच रहा हूँ।" मन-ही-मन कमलनयन कहने लगा—"मैं भी तो बेकार आदमी हूँ! मैं ही इस दुनियाँ के किस काम का हूँ! हाय मैं तो स्वयं अपने काम का भी नहीं हूँ!"

चुन्नू ने मूँगफली बिकती देखकर खरीदने का संकेत किया।

मुन्नू ने इसी समय कह दिया—चच्चा, मूँगफली।

लेकिन पैसे तो कमलनयन के पास थे नहीं। वह मुन्नू के लिए मूँगफली कैसे लेगा! चुन्नू ने कहा—"पैसे मेरे पास हैं।"

मूँगफलीवाला आ गया। कमलनयन ने कहा—"एक-एक पैसे की अलग-अलग दो। लाओ, जेबों में भर दो।" मुन्नू बोला—"हमारी मूँगफली चच्चा को दे दो उन्हीं से मैं लेता जाऊँगा।"

ऐसा ही हुआ। तब चुन्नू जेब से एक-एक मूँगफली ले-लेकर खाने लगा।

कमलनयन ने मुन्नू को मूँगफली की मिगी देते हुए कहा—"चलो, अब घर चलें।"

मुन्नू चल दिया। कमलनयन ने दोनों को अपने दोनों ओर कर लिया। घर की ओर चलते हुए वह सोच रहा था—मुझसे तो यह मूँगफली बेचनेवाला ही अच्छा!

छः

कवि-सम्मेलन जमा हुआ था। अनेक कवियों की कविताएँ पढ़ी जा चुकी थीं। लोग इधर-उधर कानाफूसी कर रहे थे।—"कमलनयनजी नहीं आये।" चारों ओर यही प्रश्न अनेक प्रकार से इधर-उधर फैल रहा था। तब तक संयोजकजी ने उठकर कहा—"आप लोगों को यह जानकर हर्ष होगा कि जिनकी आपको अत्यधिक प्रतीक्षा थी, वे—श्रीकमलनयन—आ गए हैं।"

कमलनयन ने आगे बढ़कर देखा, लगभग एक सहस्र श्रोता एकत्र हैं। सबका [illegible] एकाकार होकर गूँज रहा है। मन-ही-मन वह सोचने लगा—"इस [illegible] ऐसा ही [illegible] है। यह भी निरंतर [illegible] रहता है। यहाँ इस समय हमारी उपयोगिता है। कहा गया है—[illegible] हमारी प्रशंसा में हैं। [illegible] हमारे पीछे-पीछे [illegible] रहे हैं। [illegible] होकर [illegible] हमारी [illegible] रहेगा। अच्छा

तो है। जगत से हमको यही शिक्षा मिल रही है। एकाकी रहने पर जब हमारा कोई अर्थ नहीं है तब यहाँ, इस जन-समाज में, हमारा अर्थ क्यों हो? तब हम यहाँ भी एकाकी रहेंगे।

कमलनयनजी को सभापतिजी के पास, मंच पर, बिठा दिया गया। सभापतिजी ने प्रमोद-मुद्रा से कमलनयन को नमस्कार करके कहा—"आपका शुभागमन हमारे लिए गौरव का विषय है।"

सभामंच पर कमलनयन के आसीन होते-होते उपस्थित जन-समुदाय में एक बार फिर कोलाहल मच गया। लोग कहने लगे—बस, अब तो कमलनयनजी की कविता होनी चाहिये। सभापतिजी के पास भी कमल की कविता सुननेवालों की चिटें पहुँचने लगीं। जिन महाशय की कविता पढ़ी जा रही थी, वे जब उठकर अपने स्थान पर लौट जाने के लिए विवश हुए, तब सभापतिजी ने कमलनयनजी से कहा—अब लोग आप ही की कविता सुनने का आग्रह कर रहे हैं। अतः आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप अपने काव्यामृत की वर्षा कर हम लोगों को कृतार्थ करें।

कमलनयनजी ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा—"किन्तु मैंने तो कविता लिखना और पढ़ना एकदम से स्थगित कर रक्खा है। मेरी तबियत ठीक नहीं रहती। कविता लिखने या पढ़ने के पश्चात्, मस्तिष्क पर दबाव पड़ने के कारण, मुझे मूर्छा आ जाती है। मैं तो आप सब लोगों के दर्शनार्थ चला आया हूँ।"

अब सभापतिजी क्या करते! दुःख प्रकटकर, यही संवाद उन्होंने उपस्थित जन-समुदाय को सुना दिया। एक बार इधर-से-उधर शून्यता छा गई। लोग दुःख प्रकाश करने लगे।

अब कवि-सम्मेलन जम न सका। लोग उठकर जाने लगे। कमलनयनजी भी प्रस्थान करने ही वाले थे कि कागज़ की एक चिट एक महाशय ने उन्हें देकर कहा—"श्री शकुन्तला देवी ने आपको याद किया है।"

कमलनयनजी ने कहा—"अच्छा, चलिये।"

आगन्तुक महाशय कमलनयनजी को मुंसिफ़ साहब के बँगले की ओर ले चले।

मनुष्य का मन भी बड़ा विचित्र है। "शकुन्तला देवीजी ने आपको याद किया है" इतनी-सी बात थी और कमलनयन के मानस में हिलोर सी उत्पन्न कर गई।—"अच्छा तो उन्होंने बुलाया है। काहे को बुलाया है भला। अपनी केलि क्रीड़ा में यह नया व्यतिक्रम क्यों उत्पन्न किया है! इन्द्र दुर्लभ विलास-भोगी नरेन्द्र! तुमने इनसे मेरा यह नया परिचय करा के अच्छा नहीं किया। 'कवि' कहकर तुम जिनकी अर्चना करते हो, वह प्राणी कितना पिपासाकुल है, क्या तुममें इतना भी समझने की बुद्धि नहीं है?"

दोनों व्यक्ति गाड़ी पर चले जा रहे हैं। दूसरा मन-ही-मन सोच रहा है—'मनुष्य भूल भरा होता है। इन्हीं को देखता हूँ; अभी उस दिन तक कालेज में पढ़ते थे, तब क्या थे? कोई इन्हें जानता तक न था। आज सर्वत्र इनकी चर्चा है। इनकी लेखनी का एक-एक शब्द अपना मूल्य रखता है। आज यदि इन्होंने अपनी कविता नहीं सुनाई (बेचारे अस्वस्थ हैं) तो कवि-सम्मेलन ही फीका रहा। लोगों की आशा पर तुषार पड़ गया।"

गाड़ी मुंसिफ़ साहब के बँगले पर खड़ी हो गई। कमलनयन उतरकर [illegible] दिये। [illegible] में [illegible] हो [illegible] ही बैठ पाये थे कि [illegible] नरेन्द्र शकुन्तला को साथ लिए हुए आ पहुँचा। दोनों साथ ही बैठ गये।

शकुन्तला बोली—"[illegible] आनन्द [illegible] हुआ [illegible] पर [illegible] होने शुरू हो गये हैं। मैंने तो [illegible] के लिए बहुत कुछ [illegible] था। [illegible] सुनकर [illegible] निराश हुए। [illegible] (नरेन्द्र की ओर देखकर) इन्होंने भी नहीं [illegible]। मैंने तो यह [illegible] के लिए ही किया था।"

शकुन्तला [illegible] है, [illegible] नरेन्द्र ने ही।

परन्तु जब शकुन्तला बोलती है, तब नरेन्द्र प्रायः मौन रहते हैं। इस प्रकार जब शकुन्तला ही उससे बातें करती है, तब कमलनयन क्या करे।

संसार में क्या यही एक नारी है? कमलनयन कुछ आज का नहीं है। उसने आँख उठाकर जगत को जी-भरकर देखा है। तो भी उसे जान पड़ता है, यही एक नारी संसार में उसने देखी है।

जब शकुन्तला उपर्युक्त बातें कह रही थी, तब कमलनयन की दृष्टि उसके मुख पर थी, पर जब वह अपनी बात पूरी कर चुकी, तो कमलनयन को ऐसा बोध हुआ, जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं।

नरेन्द्र ने इसी समय कहा—देखता हूँ, आप जैसा कवि भी जब अर्थ-कष्ट से पीड़ित हो, तब अन्य लोगों की तो बात ही दूसरी है। उसी दिन से यह बराबर मुझसे कहती आ रही है कि इनके लिए कुछ करना चाहिये। और मुझे कब इनकार था? मैं यही सोचता था—कैसे, किस बहाने, आपकी कुछ सेवा की जाय। तब इसने स्वयं ही कह दिया—"कवि-सम्मेलन में पठित सर्वोत्तम कविता के रूप में। पर आपने आज उसे भी समाप्त कर दिया।"

कमलनयन इस समय, दोनों की इन बातों को सुनकर, सुखी हुआ या दुखी,—यह बतलाना कठिन है। वह सोचता था—"रुपया मिलेगा। अच्छा तो है। भाभी को दूँगा तो वह कितनी प्रसन्न होगी! भैया भी कम ध्यान दत्त न होंगे। सोचेंगे—कमल की पहली कमाई का रुपया है।"

और वह सोचता था—"एक वे हैं, जिनके भीतर कला की अर्चना के लिए कुछ त्याग करने का भाव है। और उन्हीं की श्रेणी का एक व्यक्ति मैं हूँ कि अपने मित्र से दान पाने के लिए हाथ पसार रहा हूँ! कैसी बे-बसी है!!"

अपने विशाल ललाट को समधिक सम्मुखकर कमलनयन बोला—"इस तरह मैं रुपया ले न सकूँगा। मैं मनुष्य हूँ, मुझमें कमज़ोरियों का अभाव नहीं है। तो भी इस तरह रुपया लेना मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती। मैं इसे आत्म-प्रवंचना समझता हूँ। इसका परिणाम यह होगा कि मैं इस

प्रकार सहायता लेने में अभ्यस्त हो जाऊँगा। तब अपने को एक मार्ग प
लगाने की चेष्टा जो कुछ मुझमें है भी, वह भी मर जायगी। रह गई ब
हिन्दी-जगत् की। सो, मैं तो अंतःकरण से चाहता हूँ कि ऐसा दिन श
आये, जब हिंदी के उच्च लेखक और कवि अर्थ-कष्ट में छटपटाकर अप
प्राणोत्सर्ग करने को विवश हो। जब तक ऐसा समय नहीं आता, तब त
कलाकारों की स्थिति में परिवर्तन होगा, इसमें संदेह है। बल्कि मैं तो य
भी मानता हूँ कि हमारे यहाँ यथार्थ और सप्राण साहित्य उसी सम
उत्पन्न होगा।

आपने कवि सम्मेलन की बात कही है। मैं तो समझता हूँ, कवि
की इससे हानि ही हुई है। जो कवि गायक नहीं है, वह इन कवि-सम्मे
लनों में क्या प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा! फिर कुछ थोड़े कवियों को यदि इ
प्रकार कुछ सम्मान मिलता भी है, तो दूसरे अनेक कवियों को ठेस भी त
पहुँचती है। इसके सिवा यह तो कविता का प्रदर्शन है! औ
कविता क्या प्रदर्शन की चीज़ है? जो कविता जनता को पसंद नहीं आती
जनता समझ बैठती है, वह कुछ है ही नहीं।—उसका लेख
कविता नहीं लिखता, घास छीलता है। पर कवि यदि समझे कि जनत
मूर्ख है, उसमें मेरी कविता समझने की क्षमता नहीं है, तो फिर ये कवि
सम्मेलन किस मर्ज़ की दवा हैं? इसके सिवा कवियों के सामने उनके
उदर-पोषण की समस्यायें हैं। जिन कवियों का इन कवि-सम्मेलनों में
इतना स्वागत होता है, जिनके लिए इतना कोलाहल मचता है
जनता ताली पीटने के सिवा उनके लिए क्या करती है? आज हिंदी
भाषा-भाषी जगत् में हिंदी के प्रतिभाशाली कवियों के प्रति कितना अविच
प्रेम है, इसका प्रमाण इसी से मिल जाता है कि उनकी एक सहस्र छपने
वाली कृतियों के संस्करण समाप्त होने में अनेक वर्ष लगते हैं! हिंदी
साहित्यकारों का यह सम्मान होता है कि संहार!! कवि अपनी रचना का
सम्मान यदि स्वयं नहीं करेगा, तो उसकी यही गति होगी! उसे कोई रोक
नहीं सकेगा। कवि-सम्मेलन आख़िरकार हैं तो मुशायरा ही की नक़ल।

और मुशायरा उस ज़माने का जशन है, जब इस भूमि पर नवाबों का राज्य था। तब यदि शायर लोग अपनी शायरी की नुमायश कराते थे, तो जागीरें भी पाते थे। अब तो यदि उनमें कुछ आकर्षण या माधुरी न हुई, तो वे अपनी कविता पढ़ भी नहीं पाते! और ऐसे स्थान पर आप चाहते थे, मैं कविता पढ़ता!"

कमलनयन एक प्रवाह में यह सब कह गया।

नरेन्द्र और शकुन्तला, दोनों ही, उसके इस कथन से अत्यधिक प्रभावित हो उठे। नरेन्द्र के मन में आया—"अब यह विषय ही बदल दिया जाय।" तब उसने मुसकराते हुए कहा—"तो आपको कविता पढ़ने के बाद कदाचित् इसीलिए मूर्छा आने की बात सूझी है! धन्य हैं आप! लेकिन उस्ताद, तुम तो कविता पढ़ने में वह रंग जमाते हो कि लोग याद करते जा रहे हैं।"

"यह दूसरी बात है। पर क्या मैं यह नहीं जानता कि कवि-सम्मेलनों की यह दुर्गति भी हमी लोगों ने की है?" कमलनयन ने कहा।

शकुन्तला बोली—"मैं आज समझ सकी, आपकी भावुकता इस हद तक बढ़ी चढ़ी हुई है।"

आज कमलनयन जब उस बँगले से अपने घर को चलने लगा, तब उसके मन में अपने आप सोच रहा था—"अभी तुमने जाना ही क्या है? अभी तुमको बहुत कुछ जानना है।" किंतु फिर अपने मन में उठनेवाली इस भावना को वह नोचने-सा लगा।—"हूँ, तुमने सोचा होगा, कमलनयन रुपये का लोभी है। वह एक बुभुक्षित प्राणी है। पर तुमने अभी यह तो जाना ही नहीं कि वह अंगारों में खेलने का अभ्यासी है!"

वह अनुभव करने लगा—"आज उसने वह काम किया है, जिसके लिए उसका वजन बढ़ जाना चाहिये। वह अपने पुष्ट कंधों को देखने लगा। उसे जान पड़ा, जैसे उसमें एक हाथी का बल आ गया है। और तब उसने अपने आपको फिर उसी विचार-धारा में पाया—"संसार भर को अपने संकेतों पर नचानेवाले उच्चवर्ग के कुछ लोग सदा से एक भ्रम में

रहते आये हैं। वे समझते हैं—"मूर्तिकार और गायक, चित्रकार और कवि, सभी दौलत के ग़ुलाम हैं। पर वे यह भूल जाते हैं कि वे दौलत के ग़ुलाम कभी नहीं रहे! मनोविकारों के वश होकर वे कभी पथ-भ्रष्ट हो गये हों, यह दूसरी बात है; पर दौलत की ग़ुलामी उन्होंने कभी नहीं की। उल्टे दौलत ही उनकी क़दमबोसी करती रही है।"

कमलनयन कब इक्के पर सवार हुआ था, फिर कब इक्का रवाना हुआ, कैसे टंडनपार्क पार करके यहाँ ई० आई० आर० ब्रिज से नीचे आ गया, उसे इसका बोध ही नहीं रहा। ख़ैर, उसे संतोष था कि वह अब घर के *निकट आ गया है।*

उसने इक्केवाले से पूछा—"कितना रोज़ पैदा कर लेते हो मियाँ?"

इक्केवान ने जवाब दिया—"अरे मालिक, पैदावारी के दिन गये! वह ज़माना ही और था। उस वक्त गेहूँ बारह पंद्रह सेर का बिकता था। बड़ी मौज रहती थी। अब ढाई सेर का बिकता है, तरकारी मेवा के भाव हो गई है। जहाँ चार छः घंटे एक मरतबा कस के मेहनत कर दी कि दो रुपये सीधे हो जाते थे। अब तो दिन-रात मिलाकर दस घंटे जोतता हूँ, मगर कोई बरकत ही नहीं जान पड़ती। घर में तीन बच्चे हैं—हम मियाँ-बीबी दो और। कुल पाँच खानेवाले ठहरे। आप ही बतलाइये, क्या ख़ुद खाऊँ और क्या इस जानवर को खिलाऊँ। बीबी-बच्चे रात-दिन 'लाओ पैसा' 'लाओ पैसा' की रट लगाये रहते हैं।—फिर सोचता हूँ, उसी ख़ुदा का शुक्र है, जो इतना भी मिल जाता है।—'सौ से बुरा तो एक से बेहतर बना दिया।' जिनको रोटी भी नसीब नहीं, बेचारे वे क्या करें।"

कमलनयन ने अनुभव किया—इक्केवान संतोषी आदमी है। अतएव वह तब सोचने लगा—जिस व्यक्ति के मन में सदा असंतोष की आँधी चला करती है, वह अपने जीवन में कभी शांति और सुख का अनुभव नहीं करता। हम समझते हैं, ग़रीब आदमियों को जब अत्यधिक कष्ट रहता है, तब वे कैसे उन कष्टों को सहन करते हैं। पर ऐसा सोचते

समय हम एक बात भूल जाते हैं कि जिन बातों को हम कष्टमय मानते हैं, वे उन बातों में कष्ट का उतना अनुभव ही नहीं करते। और इसीलिए जो कुछ उन्हें भगवान देता है, उसी में वे संतोष करते और उसी ढंग का अपना जीवन बनाकर निर्वाह करते हैं। महत्वाकांक्षाओं से यह वर्ग कितनी दूर चला गया है!

इक्का जब चौक के अपने स्टैण्ड पर खड़ा हो गया, तब कमलनयन उतर पड़ा।

सात

कमलाकांत स्थानीय लोअर-कोर्ट के एक एडवोकेट के मुहर्रिर हैं। वे रोज़ाना सवेरे पाँच बजे उठकर गङ्गा-स्नान करने चले जाते हैं। सात-साढ़े-सात बजे लौट आते हैं। फिर तुरन्त वकील साहब के यहाँ चले जाते हैं। वकील साहब पड़ोस में ही रहते हैं। इसलिए नौ-सवा-नौ बजे तक उनके यहाँ ज़रूरी काम तुरन्त निपटा करके भोजन पर बैठ जाते हैं। उनका इस समय का भोजन बहुत जल्दी में होता है। इसीलिए जब वे दस बजे कोर्ट पहुचकर चार-पाँच बजे घर लौटते हैं, तब इतमीनान से जलपान करके बैठते हैं। घण्टे-दो-घण्टे घर पर बैठकर फिर वकील साहब के यहाँ चले जाते हैं। वहाँ पर नौ बजे तक काम रहता है। जब कभी काम कम रहता या नहीं रहता, तब जल्दी लौट आते हैं।

जब से उन्होंने अपनी सुधि सम्हाली है, तब से जहाँ तक हो सका, उन्होंने दो काम कभी नहीं छोड़े। एक तो रोजाना सवेरे का गङ्गा-स्नान, दूसरा वकील साहब की बैठकबाज़ी। तबियत अलील होने की बात दूसरी है। पर उन दिनो भी, यदि तबियत ज्यादा खराब न हुई, तो इतना तो कर ही लिया है कि इक्के पर जाकर गंगाजी के दर्शन कर आते रहे हैं। वकील साहब के बस्ते पर बैठते हुए एक काग़ज़ पर पहले 'श्री गंगा जी सदा सहाय' लिख लेंगे उसके बाद फिर कुछ और लिखेंगे। छोटी-छोटी पाकेटबुक उन्होंने बना-रक्खी हैं,

जिनमें रोज़नामचा की तरह 'श्रीगंगाजी सदासहाय' लिखा हुआ है। ऐसी पाकेटबुकें अब तक उनके निजी ट्रंक में सैकड़ों इकट्ठी हो गई हैं। देखने-वालों ने उनका यह भेद कभी भले ही देख लिया हो, पर उन्होंने कभी इस संबंध में किसी से कुछ नहीं कहा है। अधिकतर तो यही होता आ रहा है कि वे अपनी पाकेटबुक अपने बस्ते में ही रखते हैं। बस्ता खोला और पहले यह काम कर लिया, तब और कुछ लिखा। वकीलसाहब के एक दूसरे मुहर्रिर और भी हैं। पर वे इनके मातहत होकर काम करते हैं। उनको इसकी हिदायत है कि ज़रूरत पड़ने पर भी वे इनका बस्ता कभी न खोलें। एक तो काग़ज़ात के इधर-उधर हो जाने का डर, दूसरे ज़रूरत ही ऐसी क्या है, जो कोई किसी की अधिकृत वस्तु को छुए। यह तो हुई सिद्धांत की बात। व्यवहार की बात दूसरी है। व्यवहार में कभी ऐसी ज़रूरत ही नहीं पड़ी, ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि कमला बाबू वकील साहब के यहाँ समय से न पहुँच पाये हों और उनको बुलाना पड़ गया हो।

आज कमला बाबू ज़रा जल्दी आ गये थे। चुन्नू और मुन्नू आपस में लड़-झगड़ रहे थे। चुन्नू कहता था—"काजू मैं खाऊँगा, किशमिश तुम खाओ" और यही बात मुन्नू भी कहता था। चुन्नू का कहना था— 'पुड़िया मैंने पड़ी पाई है।" मुन्नू का दावा था—"तो इससे क्या हुआ, चीज़ तो सरकारी है। और सरकारी माल में हिस्सा बराबर लगाना चाहिये।"

चुन्नू-मुन्नू में केवल एक वर्ष का अंतर है। चुन्नू आठ वर्ष का है, मुन्नू सात वर्ष का। कमलाकांत के ये बच्चे इसी उतरती उमर के हैं। इसके पहले वे पाँच बच्चे खो चुके हैं।

चुन्नू ने चाहा कि वह पुड़िया जेब में डालकर भाग खड़ा हो, पर मुन्नू ने पीछे से पकड़ लिया। चुन्नू ने मुन्नू की पीठ पर गद्द-गद्द दो धमक्के धर दिये, तो मुन्नू ने उसकी चूँदी पकड़कर खींच दी। इस तरह एक महासमर छिड़ा हुआ था। यमुना उस समय अकेली बैठी खाना पका रही थी। महा-युद्ध का तुमुल-नाद सुनकर वह वहीं से चिल्ला उठी। बोली—क्यों चुन्नू, नहीं मानोगे तुम एक बार कहने से ! यही न होगा कि मुझे चौके से उठ-

कर आना पड़ेगा; पर मेरे हाथ एक बार जो लग गये, तो फिर तुम्हें भी मालूम पड़ जायगा।

यमुना कहने को तो इतनी बात कह गई, लेकिन इतना कहने में भी उसके जी को अच्छा नहीं लगा। आज कितने वर्षों के बाद उसने इतने बड़े बच्चों का मुँह देखा है! फिर बच्चों की आदत भी तो कोई चीज़ है। एक दिन आता है, जब हम अपने इसी जीवन को पाने के लिए तरसते हैं। फिर भी कर्तव्य तो निभाना ही पड़ता है। बच्चों को डाँट में न रक्खा जाय, तो वे जो न उपद्रव खड़ा कर दें, सो थोड़ा है।

हाँ, तो यमुना की ऊपर की बातें अभी पूरी ही हो पाई थीं कि कमलाकान्त के आने की आहट पाकर दोनों चुप रह गये। लेकिन यमुना की बात तो उन्होंने सुन ही ली थी।

वैसे इन बच्चों को देखने की सारी जिम्मेदारी कमलनयन की है। लेकिन जब वह नहीं होता है, तब यमुना ही अपने इच्छानुसार फ़ैसला कर देती है। व्यवहार रूप में बच्चों का कमलाबाबू से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे उनके पास आते डरते हैं। वे तो कमलनयन से ही संतुष्ट रहते हैं। कमलाबाबू से उनका इतना ही सम्बन्ध है कि वे जब कभी कोई चीज़ ले आये, कमलनयन भी मौजूद न हुआ और बच्चों को पास बुलाने की उसकी इच्छा हुई, तो उस चीज़ को देने के लिए कह दिया—"अरे कहाँ गये तुम लोग? सुनो, इधर आओ, यह लो। और बस। कभी उनकी तबियत ख़राब हुई, तो डाक्टर को दिखलाने या वैद्य को बुलाने आदि का सारा काम कमलनयन ही करेगा। इस उलझन का कमलाबाबू के दैनिक कार्य्य-क्रम पर कोई अंतर न पड़ेगा।

यमुना ने जान लिया, वे आ गये। बच्चे भी अपने आप चुप होकर बैठ गये।

पर कमलाबाबू ने पूछ ही दिया—"क्या है?"

यमुना बोली—"कुछ नहीं, ये लोग योंही शोर मचा रहे थे।"

इतना-सा ही अवकाश इन बच्चों के लिए यथेष्ट था। दोनों दूसरे

कमरे में चले आये। मुन्नू बोला—"अब लाओ, दोनों चीज़ों में से आधा चुपचाप दे दो। झगड़ा करोगे तो मैं बाबू से कह दूँगा।"

चुन्नू ने जवाब दिया—"तुम्हीं बाबू से कह सकते हो, मैं नहीं कह सकता! लेकिन झगड़ा करने से क्या फ़ायदा, मैं आधा दिये देता हूँ यह लो।"

चुन्नू ने दो भाग कर दिये। मुन्नू ने उनमें से एक उठा लिया।

कमलाबाबू ने कहा—"वह कहाँ गया? अभी तक घूमकर लौटा नहीं मुझे तो भूख लगी है।"

यमुना बोली—"उसका क्या ठीक, कब आवे। तुम आओ न, खाना तैयार है।"

"मैं अकेला कैसे आऊँ! अकेला खाते हुए मुझे···। लेकिन उससे कहते नहीं बनता है कि जब कोई काम नहीं है, तो खाने के वक्त तो कहीं न जाया करे। दुनियाँ के सारे पाप आदमी खाने-पहनने के लिए ही करता है। और जिसे वक्त से खाना न मिला, उसकी ज़िंदगी दो कौड़ी की।"

मूछें बड़ी-बड़ी हैं। एक-आध बाल पक भी गये हैं। नाक पर सफ़ेद फ्रेम का चश्मा लगाये हुए हैं। कचहरी में पान खाने को बहुत मिलते हैं, तंबाकू खाने की भी लत है। इससे दाँत काले पड़ गये हैं। मुख पर झुर्रियाँ ज़्यादा झलकने लगी हैं। सिर में सामने बाल बिल्कुल नहीं हैं, एकदम साफ़ मैदान नज़र आता है।

यमुना फिर बोली—"तो आओ न, बैठ जाओ। शाक बन ही गया है। उसका कुछ ठीक नहीं, कब आवे। फिर, आज तो वह कह भी गया है कि देर से लौटना होगा।"

"अच्छा, कह गया है! तब आता हूँ।... लेकिन क्या कह गया है यह तुमने नहीं बतलाया।" कहते हुए कमला बाबू रसोई-घर में ही आ गये और कपड़े उतारने लगे।

यमुना ने उत्तर दिया—"कहीं कवि-सम्मेलन है। वहीं उसका बुलावा है। उसी में गया है। कह गया है, अगर आने में देर हो जाय, तो बैठी

न रहना। भैया को खिलाकर तुम भी खा लेना।"

"अच्छा, मुशायरा है! तो बाबू साहब, यह कहो कि, शायर हो रहे हैं। हूँ-हूँ, शायरी भी क्या तोहफ़ा चीज़ है। मगर जिसकी तक़दीर बलंद हो, जिसका दिमाग़ आला दर्जे का हो, जिसे बेफ़िक्री हो, दौलत जिसकी चेरी हो, उसके लिये। नहीं तो शायरी फ़क़ीरी से भी बदतर है।"

पीढ़े पर बैठ गये हैं। कौर तोड़ते हुये कहने लगे—

"और तुमसे क्या बतलाता था?"

"और तो मुझसे कुछ नहीं कहा!"

"अच्छा! तो और कुछ नहीं कहा। तुम पूछतीं, तो शायद बतलाता। ऐसे कैसे बतलाता! अपने मन से कोई बतलाता है भला। लेकिन खैर, मुझे तो ख़ुशी ही है। शायरी बड़ी अच्छी चीज़ है। अगर कहीं किसी काम में भी लग जाता, तब यो बात ही और थी!"

खाना खाने लगे। फिर बोले—"मुझे क्या करना है। जब गृहस्थी ऊपर पड़ेगी तब...।...शाक तो अच्छा बनाया है। एक तो आलू-गोभी का मेल ख़ुद ही ख़ूब लहता है। फिर मटर और टमाटर मिलकर और भी रंग ला देते हैं। विवाह तो उसका एक लग रहा है। लेकिन कसर इतनी ही है कि यह किसी काम में लग नहीं पाया है। बी० ए० करा देना भी काफ़ी नहीं हुआ। वकालत और भी पास करा दी होती, तो ठीक होता। वकील साहब तो बराबर कहते हैं। मगर ख़र्चे की क़िल्लत की वजह से मैं सोच-विचार में पड़ जाता हूँ।

यमुना बोली—"अब आगे कैसे पढ़ाया जा सकता है। इतना ही क्या कम है। बी० ए० पास करके लोग सैकड़ों रुपये महीने की नौकरी पा जाते हैं। फिर तुम यह भी कहते थे कि आजकल नये वकीलों की आमदनी पचास रुपये महीने की भी नहीं होती। अब तुम्हीं ऐसा कह रहे हो!"

कमला बाबू ने उत्तर दिया—"तुम औरत ज़ात ठहरीं। तुम क्या जानो कि गूलर किस वक्त फूलता है। यह तो हमीं लोगों का काम है।... अरे,

तुम इतना भी नहीं समझती कि अगर यह वकालत पढ़ता ही होता, तो इस वक्त तीन हज़ार रुपया नक़द का डौल था। वही तो....।...पराठा अब न रखना। यह ससुर भी अब देर में पचता है। वह तो कहो कि आदत पड़ गई है। इसी लिए।...अरे हाँ, अपनी आदत से लाचार हूँ!"

यमुना से न रहा गया। वह बोली—"तो एक काम करो। अबकी बार उसे वकालत की पढ़ाई में भरती करा दो। यही ठीक है। ब्याह हो जायगा तो गृहस्थी तो बँध जायगी। फिर पास कर लेगा तो मज़ा करेंगे, नहीं तो जब सिर पर आ पड़ेगा, तो अपने आप कुछ करेगा ही। हम लोग कर ही क्या सकते हैं! हमलोग भाग्य के साथी थोड़े ही हैं!"

पानी पीकर कमला बाबू बोले—"सो तो ठीक है। लेकिन वकील साहब कहते थे कि वह तो घर का लड़का है। पहले उसे पास तो कराओ। फिर आगे मैं सम्हाल लूँगा।... ये लोग कहाँ गये। इनको भी बुलाकर खिलाओ। आठ बजनेवाला है।"

यमुना ने पुकारा—चलो चुन्नू-मुन्नू। तुम लोगों को भी परस दूँ।

दोनों काजू-किशमिश उड़ा चुके थे। माँ की पुकार सुनकर चुन्नू बोला—चलो, अम्मा बुलाती हैं। मुन्नू ने जवाब दिया—तुमको भी तो बुलाती हैं, तुम्हीं आगे क्यों नहीं चलते?

"हूँ। हमीं को आगे जाना है तो जब तबियत होगी, तब जायँगे। अभी क्यों जायँ?...अभी चचा भी तो नहीं आये हैं।"

"तो हम अम्मा के पास जाकर कहे देते हैं कि भैया नहीं आते हैं।"

"तुम क्यों कहोगे, मैं खुद कह दूँगा।"

"तो चलो, यही कह दो।"

"तो फिर मेरे पीछे न आना।"

"नहीं आऊँगा। जाओ, तुम्हीं अकेले खाना भी खा लो। मैं खाना नहीं खाऊँगा। बिना खाये ही सो रहूँगा!"

चुन्नू अब कहने लगा—"अच्छा चलो, हम लोग खाना खा लें। चचा क्या जाने कब आवें।"

"यही तो मैं पहले कह ही रहा था।"

"तो फिर चलो न, तुम तो बहस करते हो।"

"चलो।"

यमुना ने फिर पुकारा—"अरे क्या करने लगे ? वे तो खाकर उठ भी गये।

दोनों उछलते-कूदते चौके में जा पहुँचे।"

आठ

दूसरे दिन सवेरे उठकर कमलनयन बैठक में बैठा हुआ "इंडियन ओपीनियन" के पन्ने उलट रहा था कि उसी समय एक पत्रवाहक आ पहुँचा। सलाम करके कहने लगा—अरे! आप ही हैं। हुजूर कोठी में आये तो कई बार हैं, पर हुजूर का नाम न जानता था। मुंसिफ़ साहब का ख़त है। आज शाम के वक्त याद किया है। घर में मालिकन ने दिया है! दे तो कल ही दिया था। लेकिन हुजूर के पास आज पहुँचा देने की हिदायत थी।"

कमलनयन ने पत्र के कवर को सावधानी के साथ चीरकर भीतर का पत्र निकाला। काफ़ी मोटा ख़ुशनुमा लेटर-पेपर था। जान पड़ा, उसने पारकर-पेन की हरी इंक से लिखा है। उस पर दृष्टि डालते ही कमल के मुख का भाव बदल गया। एक सलोनी लालसा से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

पत्रवाहक अभी खड़ा था। कमलनयन ने कहा—"अच्छा, फिर आना। महीने-भर बाद इसका इनाम ले जाना।"

"बहुत अच्छा बाबू जी। आप ही लोगों से पेट पलता है।"

"क्या यह नरेन्द्र का ही स्वरूप है ? आज अनेक वर्षों से उससे मेरी मित्रता है। वह अपना सहपाठी रहा है। परन्तु इतना प्राणपोषक सौहार्द

मैंने उसमें कभी नहीं पाया। तब फिर यह किसकी करुणा है? ...अच्छा, यह बात है! तो यह तुम हो! पर तुम्हीं क्यों इस पिपासाकुल प्राणी की ओर ऐसी करुणामयी हो उठी हो रानी!"

मन-ही-मन ये बात सोचते-विचारते कमलनयन अपना सूट-केस देखने लगा। उसे देखते-देखते वह इस निश्चय पर जा पहुँचा कि उसके छात्र-जीवन के कपड़े अभी यथेष्ट मात्रा में रक्खे हुए हैं। चिंता का ऐसा कोई कारण नहीं।

उठकर कमलनयन दाँतौन करने लगा। वह दाँतौन करता जाता है और उसका मानस लहरें ले रहा है। उसे जान पड़ने लगा है कि उसके दिन फिरनेवाले हैं। वह अब बेकार नहीं रहेगा। उसके पास चार पैसे होंगे। वह भी अब अपने आपको आदमी समझ सकेगा। उसकी भाभी उसे चाहेंगी, उसका आदर करेंगी। उसके अग्रज उसकी उन्नति देखकर गौरव का अनुभव करेंगे। उसके सहपाठी अब उसके निकट बैठने-उठने में संकोच का अनुभव न करके, एक प्रकार की समानता का भाव उसमें पाकर, विनोद वल्लरियों के साथ, निश्छलता से अठखेलियाँ करने को सर्वथा स्वतंत्र रहेंगे। वाह! तब उसका यह जीवन कितना सुख-संतोषमय होगा!

दाँतौन कर लेने पर कमलनयन ने हजामत बनाई। साबुन से मलमल कर ख़ूब स्नान किया। यमुना खाना बनाने की धुन में थी। उसने अभी तक कमलनयन की ओर देखा न था। स्नानागार से अपने कमरे की ओर कमलनयन को जाते देखकर एक विशेष प्रकार की भीनी ख़ुशबू का झोंका उसकी ओर जो लपका, तो यमुना के कान खड़े हो गये। विस्मय से ज़रा रुक कर देखा। कुछ कहा नहीं। लेकिन उसके अरुणारे अधर, अपने सीमित कलेवर से किञ्चित विकास की ओर उन्मुख हो ही उठे। पर कमलनयन की दृष्टि उधर न थी। वह इधर से निकला और उधर जा पहुँचा।

चुन्नू-मुन्नू का मास्टर उन्हें पढ़ाकर लौट गया था। अब वे दोनों फिर

स्वतंत्र हो गये थे। चुन्नू अकस्मात् कहने लगा—"चचा से कहेंगे, यह मास्टर हमको अच्छी तरह नहीं पढ़ाता। कद्दू जैसा तो उसका सिर है। और नाक तो फैलकर उल्टी (⊥) ही हो गई है।

मुन्नू ने कहा—"तुम बिलकुल उल्लू की-सी बातें करते हो! हमको उसकी सूरत से क्या मतलब! हमको तो देखना सिर्फ़ यह है कि उसमें पढ़ाने का शऊर है कि नहीं। और सच पूछो तो हमको यह भी नहीं देखना है। हमको तो सिर्फ़ पढ़ना है।

"बड़ा पाजी हो गया है तू। तुझे इतनी भी तमीज़ नहीं कि अपने बड़े भाई से कैसी बात की जाती है। बदतमीज़ कहीं का।" चुन्नू कह उठा।

"अच्छा, तो तुम मेरे उल्लू कहने का बुरा मान गये! लेकिन तुम तो मेरे दद्दा हो! माफ़ नहीं करोगे मुझे?" कहकर मुन्नू ने हाथ जोड़कर चुन्नू के पैर छू लिये।

"अच्छा अच्छा, मैंने तुमको माफ़ किया। लेकिन।..."

"अब लेकिन-वेकिन मैं कुछ नहीं मानूँगा।" हँसते-मुँह बनाते हुए मुन्नू कहने लगा। अब चुन्नू भी हँस पड़ा। दोनों ताली पीट-पीटकर फिर उछलने लगे। चुन्नू बोला—"चलो, अब खाना खाने का वक्त हुआ। स्कूल जाना है। हमलोग भी नहा लें। लेकिन ज़रा देख लें—चचा क्या कर रहे हैं।"

मुन्नू बोला—"मैं तब तक यह देख आऊँ कि खाना पकने में क्या देर है।"

"हाँ हाँ, ठीक है। जाओ, मैं भी।..." कहकर वह भी कमलनयन की ओर चल दिया।

कमलनयन उस समय अपने कमरे में व्यायाम कर रहा था। दरवाज़े बंद थे। बैठक करता हुआ वह हाँफता जाता था। चुन्नू झट माँ के पास दौड़ गया। बोला—ओरी ओर। चचा तो आज कसरत कर रहे हैं। सच अम्मा। इतनी ज़ोर से हाँफते हैं कि बाहर से सुनाई पड़ रहा है। चलो, तुम भी न देख लो। बड़े मज़े की बात है। चलो न, देख लो चलकर। मैं

कुछ झूठ थोड़े ही कह रहा हूँ !

"चल हट ! नालायक़ कहीं का। कसरत कर रहे हैं, तो उसमें तमाशे की बात क्या है ! यह तो बड़ी अच्छी बात है।"

"हाँ, अच्छी बात है—बड़ी अच्छी बात है—तो फिर तुम भी कसरत क्यों नहीं करती हो !"

"दुत्, पगला कहीं का ! जिसके लिए जो काम बनाया गया है, वह उसी को अच्छा लगता है। सभी आदमी जिस तरह एक-से नहीं होते, वैसे ही वे सभी काम भी नहीं किया करते। उनकी उमर अभी अपना शरीर बनाने की है। तुम भी जब उस उमर के होगे, तब तुम्हें भी कसरत करने के लिए कहूँगी। जाओ, सबको बुलाओ। खाना तैयार है, अपने चच्चा को भी बुलाओ"।

मुन्नू भी लौटकर कमलनयन को कसरत करते हुए देखने गया हुआ था। वह भी अब आ गया। बोला--"चच्चा को कसरत करते हुए मैं भी देख आया। वे दंड भर रहे थे। लँगोट पहने हुए थे। अच्छा, हम भी लँगोट पहनेंगे, हम भी दंड भरेंगे।"

"हाँ मुन्नू, अभी नहीं, कुछ और बड़े हो जाओ। तब तुमको भी कसरत करने को कहूँगी। अभी तो तुमको दौड़ने का अभ्यास डालना चाहिये।... अच्छा अब आओ, खाना तैयार है। सबको लिवा लाओ।"

कमला बाबू इसी समय आगये और चौके में पीढ़े पर बैठते हुए, चुन्नू से बोले—"जाओ, अपने चच्चा को लिवा लाओ।"

कमलनयन धोती से बदन ढके हुए इसी समय आ पहुँचा। बोला—"मुझे अभी दस मिनट की देर है। आप तब तक भोजन कीजिये। मैंने आज से फिर नियम से रहने का निश्चय किया है। अभी कसरत करके आ रहा हूँ।"

कमला बाबू बोले—"बहुत अच्छा है। नियम से तो रहना ही चाहिये। लेकिन एक बात ज़रूर कहनी पड़ती है कि नियम से रहना भी तभी शोभा देता है, जब बेकारी न हो।"

उत्साह का भाव झलकाते हुए कमलनयन ने कह दिया—"उसका भी प्रबंध हो रहा है दद्दा। आज शाम से एक ट्यूशन लग गया है। अभी अधिक तो नहीं, केवल तीस रुपये मिला करेंगे। एक घंटा पढ़ाना पड़ेगा।"

कमला बाबू आश्चर्य्य के साथ हँसकर बोले—"अच्छा! चलो, यह बहुत अच्छी ख़बर तुमने सुनाई। इस तरह के दो ट्यूशन अगर और मिल जायँ, तब तो फिर क्या पूछना! ..लग ही जायँगे। उसी अंतर्य्यामी ने इतना किया है, वही और आगे भी करेगा। क्यों नहीं करेगा? ज़रूर करेगा।"

बात पूर्ण करते क्षण उनके दोनों हाथ ऊपर उठे हुए थे और आँखों में हर्षातिरेक और भगवान के प्रति आत्मसमर्पण के कारण आँसू भर आये थे।

नौ

सूट एकदम से नया नहीं है, फिर भी काफ़ी लकदक है। कहीं न तो झोल है, न सिकुड़न। टाई भी ख़ुशनुमा है। हैट की जगह नाइटकैप ने ले ली है। हाँ, रिस्ट-वॉच की कमी है। लेकिन असुविधा की कोई बात नहीं है। जहाँ कमलनयन सुरेन्द्र को पढ़ाने बैठा है, वहाँ एक ऑफ़िस क्लॉक लगी है।

सुरेन्द्र प्रकृति का गम्भीर है। बहुत क़ायदे से रहता है। क़हक़हा लगाकर वह कभी नहीं हँसता। एक मन्द मुसकराहट ही उसकी प्रसन्नता की द्योतक रहती है। वह बंद गले का कोट पहनता है। पैंट न पहनकर ढीला सफ़ेद पायजामा पहनता है। सिर खुला न रखकर काली टोपी देता है।

कचहरी से उठकर तुरन्त नरेन्द्र क्लब चले जाते हैं। वहाँ शकुंतला और वे दोनों टेनिस खेलते हैं। टेनिस खेलने में शकुंतला बड़ी दिलचस्पी

नरेन्द्र उसकी प्रतीक्षा कर लेता है। लेकिन उसे देर होने ही क्यों लगी। वह खुद ड्राइव कर लेती है। नरेन्द्र के साथ बैठने पर भी अधिकतर वही ड्राइव करती है। इसीलिए ड्राइवर का झंझट नहीं रक्खा गया है।

कई दिन से कमलनयन सुरेन्द्र को पढ़ाने के लिए बराबर आ रहा है एक दिन की बात है। तब तक नरेन्द्र आया न था। उधर छै बजने का समय हो रहा था। सुरेन्द्र ने जब देखा, कमलनयन उठने ही वाले हैं, तो उसने बतलाया—"दद्दा आपको थोड़ी देर रुकने को कह गये हैं। वे अब आते ही होंगे। आज वे क्लब में चाय न पीकर यहीं पियेंगे। हरिया चाय बना रहा है।"

इसी समय कार का हार्न सुन पड़ा। बँगले की बरसाती में आकर तुरंत ही शकुन्तला और नरेन्द्र उतर पड़े। शकुन्तला इस समय वेष बदले हुए थी। साड़ी के ऊपर एक फ़रकोट था। बढ़िया, एकदम न ऊँची एंड़ी के शैंडिल्स उसके पैरों में थे। आते ही उत्सुक नयनों से उसने कमलनयन की ओर देखा। कमरे के भीतर पा-पोश पर वह खड़ी हुई। फिर अपने कमरे की ओर जाती हुई तर्जनी के संकेत के साथ मुसकराकर कहती गई—"ए मास्टर साहब, ज़रा ठीक से पढ़ाइयेगा!"

कमलनयन ने अनुभव किया, जैसे चपला हो और आँखों में एक चकाचौंध-सी उत्पन्न करके चली गई हो। उसे प्रतीत हुआ, प्राण-पोषक विद्युद्धाराओं ने मानो उसकी समस्त देह को आप्लावित कर लिया है। वह उठ खड़ा हुआ और कमरे में टहलने लगा। सुरेन्द्र भी उठकर खड़ा हो गया। भाभी ने आकर आज जिस ढंग से उसके मास्टर से 'ज़रा ठीक से पढ़ाइयेगा' कहा, मन-ही-मन वह उसकी समीक्षा कर रहा था। उसे उसके इस कथन में कुछ असंगति-सी प्रतीत होती थी। किंतु निश्चित रूप से किसी परिणाम पर पहुँचने में वह कुछ हिचकिचा रहा था। वह जानता था कि भाभी मास्टर साहब का आदर करती हैं। उसे कुछ-कुछ इसका भी बोध था कि इन मास्टर साहब को ट्यूटर नियुक्त करने में भाभी का ही प्रमुख हाथ है, तब फिर उन्हीं मास्टर साहब से, इस निराले ढंग से बात

करने में उनका क्या भाव हो सकता है, इसी के निष्कर्ष पर पहुँचने में उसे कठिनाई हो रही थी।

सुरेन्द्र को अब शकुन्तला की तत्कालीन मुद्रा का स्मरण हो आया। उसके आनन पर अप्रतिम उल्लास तरंगित हो उठा था। एक प्रकार की लालसा जैसे अनंत धाराओं में फूटकर उसकी उस माधुरी मूर्ति भर में समापन्न हो रही थी। तब उसे स्पष्ट प्रतीत होने लगा—भाभी के कथन में एक चुहल थी; एक सलोना व्यंग्य, एक मदिर कटाक्ष। और वह सोचने लगा—'किंतु भाभी के लिए मास्टर साहब में ऐसी चुहल आयी ही क्यों!"

उसके भीतर यह प्रश्न अपने उग्र रूप में उठ खड़ा हुआ। तब उसे कुछ अच्छा न लगा। किंतु उसी क्षण उसके मन में आया, वह ऐसा सोचता ही क्यों है!—उसे ऐसा सोचने का अधिकार ही क्या है? बड़ों की ग़लती खोजने के लिए छोटे नहीं बनाये गये। फिर भाभी तो देवी हैं। उनके सम्बन्ध में मुझे कुछ भी अन्यथा नहीं सोचना चाहिये। थोड़ी देर इधर-उधर टहलकर वह यही सब सोचता हुआ भीतर चला गया।

उधर कमलनयन में एक विराट हलचल थी। वह अपनी स्थिति से परिचित था। विवेक अभी उसने खो नहीं दिया था। अपने भीतर सोये दानव को उसने सजग होते हुए देख लिया था। तो भी उसके मन में आया—यदि वह बिना सूचना दिये भीतर चला जाय और उसके पास जाकर एक, दो, तीन, चार करते-करते एक दजन चुम्बन जड़ता चला जाय और फिर कहने लगे—"अब बोलो, क्या कहती हो!—उस समय तुम क्या कह गई थीं, मैंने ठीक तरह से सुन नहीं पाया था!"—तब कैसा हो!

परन्तु दूसरे ही क्षण उसे बोध हुआ, न तो वह पागल हो गया है, न उसने ऐसा आचरण कर बैठने की क्षमता ही अर्जन कर रक्खी है। शकुंतला उसकी है कौन!....और एक शकुंतला ही क्यों, इस अखिल विश्व में कहीं भी कोई उसका कौन है!...किन्तु यदि शकुंतला उसकी ओर से कोई नहीं हो सकी है? तो फिर यह छेड़ किस लिए है? प्रश्न है कि हृदय-वीणा के इस तार का यह स्पर्श क्या हेतु रखता है? इस पाषाण-खण्ड,

को सरिता की यह हिलोर अकस्मात् आकर छू ही क्यों गई है? एक पिपासाकुल मृग को आज इस यौवन-हत मृगी ने अपने नयन-बा से विद्ध करने की चेष्टा ही क्यों की? क्या वह नहीं जानती कि कम नयन भी मनुष्य है। और मनुष्य पशु पहले होता है, पीछे मनुष्य बन है। वह मनुष्य बन कर भी पशुत्व को सर्वथा खो नहीं पाता। पौ और पराक्रम, आक्रमण और हिंसा के समय उसका पशुत्व ही विजयी बनाता है।

वह देर तक कमरे में टहलता हुआ यही सब सोचता रहा।

उधर शकुंतला उमंग में आकर वह कटाक्ष तो कर गई, पर तत्काल उसने अनुभव किया, उसकी यह चेष्टा कमलनयन को भ्रम-विह्वल भी सकती है। उसने सोचा, मेरे संबंध में वह न जाने क्या सोचने लगेग परन्तु उसी क्षण उसके अन्तराल से कोई और ध्वनि फूट निकली। उर भीतर महासागर का-सा भीमविस्फूर्जन उद्दीत हो उठा। वह सोचने लगी- उसने साहित्य के अगाध में अब तक यही पाया है? विश्व के इस विशा आँगन में अपनी इन आँखों से क्या उसने यही नहीं देखा है? नारी-हृदय व निरंतर खौलते रहने के लिए ही बना है। मानवात्मा के ये समस्त तरं संकुल प्रस्तार क्या पाप के ही प्रकरण हैं?....नहीं तो। ऐसा तो नहीं तुम तो निरे प्रेम हो मेरे प्राण! संसार का कलुष भी तुम्हारे ही चर धोकर स्वर्ण की भाँति अभिराम बनता है। युग-युग के प्राण-पोर अमरत्व तुम्हीं तो हो मेरे प्रेम। तुम्हीं तो हो जो अक्षय कला के रूप अपना अनमोल संगीत सुनाते हो। आओ, मेरे इस प्रांतर में एकांत शा करो। इस चिरनिद्रित मन को अपने मृदुल कण्ठ से झकोरकर, एक ब उसके स्तर-स्तर को उल्लास के जागरण से उत्थित तो कर दो। इसमें प न होगा, न होगा। पाप की भावना का विषमगरल भी तुम्हें छूकर अद अमृत बन जायगा।...मैं तो सदा से सुन्दर और सत्य को शिव मानती आ हूँ देव। मैं चाहती हूँ, मेरे इस विश्वास में कभी बल न पड़े, विश्व कोई भी सत्ता मेरी इस धारणा को कंपित करने का साहस न करे।

मुझे चिंता नहीं, कोई कुछ भी कहे; कुछ भी सोचे और कुछ भी समझता रहे।

इसी क्षण सुरेन्द्र ने भीतर से बाहर निकलकर कहा—चलिए मास्टर साहब भीतर चलिए, भैया चाय पीने के लिए आपको बुला रहे हैं।

कमलनयन सुरेन्द्र के साथ हो लिया। वह कुछ बोल न सका। वह बाहर तो था, किन्तु उसमें जो बोलता था, वह तो अपने आप ही में समाहित हो रहा था।

शकुंतला और नरेंद्र टी-टेबिल को छूते हुए बैठ गये थे। कमलनयन को आता हुआ देखकर नरेंद्र ने कहा—"आइये इधर निकल आइये।"

रूमाल मुँह से लगाकर शकुन्तला बोली—"मैं अछूत बना दी गयी हूँ। मेरे निकट...।

नरेन्द्र पाइप पीता हुआ शकुन्तला की ओर आँख उठाकर देखने लगा।

कमलनयन नरेंद्र की कुर्सी के निकट जा बैठा।

प्याले रखे जा चुके थे। सबके आगे एक-एक प्लेट में टोस्ट के दो-दो टुकड़े, दूसरे प्लेट्स में दो-दो समोसे हरिया आकर जब रख गया, तो नरेंद्र ने सबके प्यालों में चाय परोस दी। फिर अपनी-अपनी इच्छित मात्रा में दूध और चीनी सभी छोड़ने लगे।

इस प्रकार जब चाय ठीक तरह से पीने योग्य स्थिति में तैयार हो गई, तो नरेंद्र ने अपने प्याले को ऊपर उठाते हुए कहा..."हाँ, अब शुरू कीजिये।" फिर एक गरम घूँट कण्ठ से उतारकर उसने कहा—"कहिये कविजी, आपका काम ठीक तरह से चल रहा है न!"

कमलनयन ने निर्विकार भाव से कह दिया—"हाँ, आपकी कृपा से सब ठीक है। यद्यपि उसको इस नये ढँग के सम्बोधन में कुछ विनोद की मात्रा ज्ञात हो रही थी। पर उसकी गंभीरता में अब भी कोई क्षीणता न आई थी।

मुसकराते हुए नरेन्द्र कहने लगा—"इनको आपसे एक शिकायत है!"

कमलनयन स्तम्भित तो हो उठा; किन्तु क्षण भर के लिए विस्मय

भाव को दबाकर जिज्ञासा-वृत्ति को ही प्रमुख करके उसने पूछा—"कहिये, क्या बात है ?"

नरेन्द्र शकुंतला की ओर देखते हुए कहने लगा—"इनका कहना कि कविजी बड़े संकोचशील प्रतीत होते हैं। अपनी वृत्तियों पर अवगुण्ठ डाल-डालकर, एकांत मौन के आश्रय में निमग्न रहने का उन्हें अभ्या पड़ गया। हमलोगों से खुलकर बातें करना भी अभी तक उनमें न आ पाया है। मैं नहीं जानता, इनका यह आक्षेप कहाँ तक सही है इसीलिए मैं जानना चाहता हूँ कि इस विषय में आपका वक्तव्य क्या है ?

इसी समय शकुंतला ने पहले नरेन्द्र की ओर और फिर कमलनय की ओर पुलक मुद्रा से देखकर कहा—"पेश्तर इसके कि अब और बा आगे बढ़े, मेरे दो प्रस्ताव हैं। एक तो यह कि चाय तैयार है हमलो पहले उसका सत्कार करें। और तब अपने वार्ता-विनोद की ओर दृि डालें और दूसरा यह कि बाबू कमलनयनजी यदि बुरा न मानें तो आ से मैं उन्हें मास्टर-साहब कहा करूँ।"

प्रमुदित होकर कमलनयन ने कहा—"मैं दोनों प्रस्तावों से अपनी सहमि प्रकट करता हूँ।"

एक-एक प्याला चाय पी लेने के बाद उपस्थित मंडल के प्रत्येक सभ ने एक दूसरे की ओर देखा। नरेंद्र बोला—"हाँ, अब मैं अपने उस प्रश पर आकर आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

कमलनयन ने कहा—'मुझ पर जो चार्ज लगाया जा रहा है, मैं उं स्वीकार करने में बड़ा प्रसन्न होता, यदि आक्षेपिका महोदया मुझे यह समझाने का कष्ट स्वीकार करतीं कि विधाता ने मनुष्य के रूप में जो मैशीन बनाई है, उसमें बुद्धि को निरन्तर सजग रखने की कौन-सी विधि अनिवार्य रूप से उपयोगी प्रमाणित हो सकी है।

शकुन्तला पर कमलनयन के इस कथन का प्रभाव विद्युद्धारा के झटके की भाँति वा पड़ा। उसने इस क्षण के पूर्व कभी सोचा भी न था

कि जिस व्यक्ति को वह अभी तक निरा कवि मानती आई है, वह भीतर से तार्किक भी इतना अधीत और उद्धत है।

नरेन्द्र समझ गया कि कमलनयन का उत्तर खूब सम्हला हुआ है। जिस बात की गुत्थी खोलने की ओर उसका अंगुलि-निर्देश हुआ है, उसी से मेरे प्रश्न का समाधान हो जाता है। उसने यह भी अनुभव किया कि शकुन्तला अभी इस मर्म के आधार-स्थल तक नहीं पहुँच सकी है। फिर भी उसने कहा—"मैं जानता हूँ कि आपका संकेत लक्ष्य तक जा पहुँचता है। तो भी हम लोगों को कैसे विश्वास हो कि आपकी प्रेरणा प्रवृत्ति-पूर्ण ही है।"

अब शकुन्तला का कार्य सरल हो गया था। उसने उत्साह के आवेग को सम्हालते हुए कहा—"हम आज आपसे यह बात स्पष्ट रूप से कह लेना चाहती हैं कि अभावों की सृष्टि बहुत समझ-बूझकर की गई है। जो लोग यह समझते हैं कि मेरे जीवन में अमुक प्रकार का अभाव रखकर भगवान ने मेरे साथ अन्याय किया है, मैं समझती हूँ कि उन लोगों ने सृष्टि के रचनाकौशल को समझने की चेष्टा नहीं की। मैं तो समझती हूँ, अभाव ही हमारे जीवन के चिरसखा हैं। आप थोड़ी देर के लिए, यदि समझते हों कि आपको दरिद्र बनाकर भगवान ने आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है, तो मैं कहना चाहूँगी कि आपने यह क्यों नहीं समझा कि इसी प्रकार के एक-न-एक अभाव संसार के प्राणि-मात्र से सम्बद्ध रक्खे गये हैं। तब क्या विधाता का यह समस्त विधान ही अन्याय पूर्ण न सिद्ध होगा। पर गम्भीरता से यदि सोचें, तो आपको पता चलेगा कि वास्तव में बात ऐसी नहीं है। अभावों का अस्तित्व ही हमारे कर्म-मार्ग का निर्देशक हुआ करता है। हम इस बात से दुखी क्यों हों कि अमुक वस्तु हमारे पास क्यों नहीं है!

कमलनयन ने अबाधगति से कहना शुरू किया—"क्योंकि हमको आँखें दी गई हैं; और खेद की बात है कि वे दो प्रकार की हैं। एक प्रकार की आँखें वे हैं, जिनसे हम वस्तुओं का वाह्य रूप देखते हैं;

उन्हें हम चर्मचक्षु कह सकते हैं। दूसरे प्रकार की आँखें हमारी संबोधशक्ति के रूप में हैं। उन्हें हम ज्ञानचक्षु कह सकते हैं। इन दोनों प्रकार के चक्षुओं से हम जो कुछ देखा करते हैं, वही हमारे दुख का कारण हो जाता है। मान लो, माताप्रसाद एक साधारण शिक्षा का व्यक्ति है। वह एक संस्था में उच्च पद पर नियुक्त है। जिन व्यक्तियों का उस पद से सम्बन्ध है, उनमें से अधिकांश उससे असन्तुष्ट रहते हैं। तो भी तिकड़म से वह उस संस्था पर अधिकृत है। उधर माताप्रसाद से कहीं अधिक योग्य व्यक्ति ठोकरें खाते फिरते हैं। लोग सोचते रह जाते हैं कि यदि उसके स्थान पर अन्य कोई योग्य व्यक्ति होता, तो उससे हमारा कितना अधिक कल्याण होता। यह बात केवल संस्थाओं के संबंध में नहीं है। शिक्षा, आरोग्यता, व्यवस्था तथा न्याय-विभाग आदि सभी क्षेत्रों में हम नित्य ही देखते हैं कि सर्वथा निकृष्ट और अयोग्य व्यक्ति मौज उड़ाते हैं और योग्य व्यक्ति कौड़ी के तीन बने मारे-मारे फिरते हैं। सचाई का दिनों-दिन लोप हो रहा है, प्रदर्शन-वृत्ति और मिथ्यावाद का प्रचार इतनी तीव्र गति से बढ़ रहा है कि हम उत्तरोत्तर पतन के गर्त की ओर प्रस्थान करते जा रहे हैं। अभावों की अनुभूति में दुखी होने का भी यही कारण है।"

शकुन्तला और नरेन्द्र चुपचाप शान्त बैठे थे। किसी के मुख से कोई शब्द नहीं निकला। तब कमलनयन ने पुनः अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कहा—"जीवन-संग्राम में संतुष्टि और शान्ति एक सीमा तक ही श्रेयस्कर हो सकती है। पर जहाँ समस्त राष्ट्र ही नहीं, अखिल विश्व ही संघर्षमय हो रहा हो, वहाँ प्रगतिशील आत्माएँ चुपचाप कैसे बैठें। उनसे अगर और कुछ नहीं होता, तो क्या वे अपनी आन्तरिक वेदना का चीत्कार भी विश्व के कानों तक न पहुँचायें। हम दुखी हैं और आपसे हमारे दुःख का शमन नहीं होता, तो आप हमारे दुःखों के साथ मज़ाक क्यों करते हैं! हम संसार के क्षुब्ध, क्षुधात और त्रस्त प्राणी हैं। हमें अपनी गति के साथ चलने दीजिये। हम बढ़ेंगे, तो अपनी गति से बढ़ेंगे; मिटेंगे तो मिट ही जायँगे। पर हम जब तक मनुष्य हैं, तब तक मनुष्य की तरह ही रहना चाहेंगे।

हमारी मनुष्यता तब तक मर नहीं सकेगी। इसीलिए हम हँसेंगे तो अपनी गति से, रोएँगे तो अपनी गति से। जिस किसी को हमारे साथ सहानुभूति हो, वह हमीं-सा होकर रहे। पर यदि वह हमारे साथ नहीं रह सकता, तो उसकी मौखिक सहानुभूति तो हमारे मनोरंजन ही का विषय रहेगी। हमारी आत्मा का उसके साथ मिलन कैसा! नरेन्द्र बाबू ने कहा था—"मैं अपनी प्रकृति पर अवगुण्ठन डालकर रहता हूँ। "मैं मानता हूँ, उनका अनुमान यथार्थ ही है। किन्तु यदि मैं कहूँ कि जब मेरी प्रवृत्तियाँ साकार रूप में आपके समक्ष उपस्थित हो ही उठीं तब उनको संतुष्ट करने और उन्हें स्थिरता का संबल देने का उत्तरदायित्व भी क्या आप लोग वहन करने को तैयार होंगे?"

अत्यधिक गम्भीरता से नीरव हो गये हुए वातावरण को तरङ्गित कर देने के अभिप्राय से, जरा-सी हँसती और संदेश उठाती हुई शकुन्तला बोल उठी—"अवश्य-अवश्य महात्मन्, हमलोग हर प्रकार से आपकी सेवा करने के लिए तैयार है।"

शकुन्तला आगे कुछ और भी कहने जा रही थी कि नरेन्द्र ने यकायक उसे चुप रहते देखकर कहा—"आज बहुत दिनों के बाद जान पड़ा, जैसे कुछ क्षणों के लिए मैं अपने कालेज के डिबेट में सम्मिलित होकर कमलनयन बाबू का मर्मस्पर्शी सम्भाषण सुन रहा हूँ। सचमुच मैं तुम्हारे इस कथन से बहुत आनन्दित हुआ। वास्तव में तुमने जो कुछ कहा, मैं अक्षरशः उसी मत का हूँ। मेरी पीड़ा भी कुछ इसी प्रकार की है। किन्तु मैं भी तो लाचार हूँ। सब कुछ इच्छा रखते हुए भी विवश हूँ। और केवल कामना रखने से ही क्या हो सकता है।...अच्छा, अब हम लोग अपने-अपने शेष भाग को अंगीकार करें। ये लो, शकुन ने तो संदेश पहले ही साफ़ कर दिया।"

———

दस

आज शकुन्तला का चित्त स्थिर नहीं है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे उसके प्रवाह में कहीं कोई अनपेक्षित वस्तु आकर अटक गई है; और इस कारण उसकी अबाधगति को रुककर घूमकर आगे बढ़ना पड़ रहा है वह वस्तु कौन है, इसका कुछ ठीक निश्चय वह कर नहीं सकी है।

शकुन्तला अपने आपमें विवेकशीला रमणी है। कर्तव्याकर्तव्य की मीमांसा करने में उसे कभी देर नहीं लगी। आज भी वह अपने कर्तव्य की निर्मल आभा से अपने आपको यथेष्ट आलोकित पाती है। समाज की मर्यादा का उसे बोध है। भारतीय संस्कृति में दाम्पत्यजीवन के जिस रूप को यह आदर्श मानती आई है, उसमें कहीं कोई भी अन्तर, व्यतिरेक या परिशोधन का विचार उसके मन में आकर टिकता नहीं है, तो भी कुछ ऐसी बातें अवश्य हैं कि आज उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।

"हम संसार के क्षुब्ध, क्षुधित और त्रस्त प्राणी हैं। हमें अपनी ही गति से चलने दो" कमलनयन का यह वाक्य बारबार जैसे मोटो बनकर उसके सामने उत्थित हो उठता है।

सवेरे के आठ बज गये हैं। शकुन्तला अभी पलँग पर से उठ नहीं सकी है। नरेन्द्र नहाकर जब व्यायाम भी कर चुका, तो शयन-कक्ष में जाकर उसने देखा, शकुन्तला ने अब भी पलँग नहीं छोड़ा है। लेटे ही लेटे उस समय भी वह एक पुस्तक पढ़ रही है।

नरेन्द्र ने सशंकित होकर पूछा—"क्या आज तुम्हारी तबियत कुछ अलील है ? उठोगी नहीं ? आठ तो बज गये।"

शकुन्तला ने पुस्तक सामने से हटाकर कहा—"रात को ठीक तरह से नींद नहीं आई। सिर में दर्द भी है।" और वह नरेन्द्र के मुख को एक अध्ययन की दृष्टि से देखती रही।

नरेन्द्र ने भी देखा, शकुन्तला कुछ अन्यमनस्क-सी प्रतीत हो रही है। किन्तु उसकी बात सुनकर उसने कहा—"और तिस पर भी तुम अध्ययन में लगी हुई हो। इससे तो सिरदर्द और बढ़ेगा। इसके सिवा तुमने अभी

तक नित्यकर्म से भी निवृत्ति नहीं ली। यह सब ठीक नहीं है। जो लोग स्वतंत्रता को अनियमित मानते हैं वे उसे पहचान नहीं पाते।

शकुन्तला अब उठ बैठी। नित्य कर्म से जब वह निश्चिन्त हुई, तो नौ बज गया था। नरेन्द्र पूजा से उठकर भोजन करने की तैयारी में था। शकुन्तला उसके निकट जाकर बोली—आज मेरी इच्छा है, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ। प्राइवेट-रूम में बैठी रहूँगी। वहीं कुछ पढ़ूँगी। यहाँ मुझे अच्छा नहीं लगेगा। आजकल एकान्त मुझे अप्रिय हो गया है। इसीलिए मैं तुमको किसी समय छोड़ना नहीं चाहती।

नरेन्द्र मुसकराने लगा। बोला —"वाह! यह तमाशा तुमको ख़ूब सूझा। अच्छी बात है, चलो। जान पड़ता है, आज मुझे ठीक तरह से अपनी ड्यूटी भी न बजाने दोगी।"

"वहाँ जाकर मैं आपके काम में विघ्न डालूँगी, आप ऐसा सोचते ही क्यों हैं! क्या मैं इतना भी नहीं समझती कि आपको उस समय विषयान्तरित करना ठीक न होगा!...मैंने तो योंही कह दिया था; क्योंकि मेरी वैसी इच्छा थी। पर तुमको आपत्ति है, तो लो मैं न जाऊँगी।"

"नहीं शकुन, अब तो तुमको चलना ही पड़ेगा। जल्दी से नहा लो, मैं तब तक फ़ाइल उलट डालता हूँ। फिर साथ ही खाना खाकर चले चलेंगे।"

"किन्तु जिसमें तुमको व्यतिक्रम हो, ऐसा काम मैं क्यों करूँ; मैंने तो योंही सहज भाव से कह दिया था। अब जाने दो, मेरी उस बात को। मैं भी अब यही सोचती हूँ कि मेरे वहाँ मौजूद रहने के कारण तुम्हारी एकाग्रता में व्याघात उपस्थित हो सकता है।"

"कुछ भी हो, अब तो तुमको चलना ही पड़ेगा। तुम्हारी बात न सही अब मेरा ही आग्रह समझ लो; अब तो चलोगी।"

"अच्छा अब इस तरह रूप बदलोगे" कहती खिलखिल हँसती हुई शकुन्तला नहाने चली गई। नरेन्द्र फायल उलटने लगा। पर तुरन्त उसे प्रतीत हुआ, वह अपने साथ खेल कर रहा है। वह सोच रहा था—"अजीब

तबियत इसने भी पाई है। जीवन के क्षण-क्षण को नवल स्फूर्ति से तरङ्गित रखने की कितनी उत्कण्ठा इसमें समाई हुई रहती है! ऐसा उल्लास यदि निरन्तर सम्भव हो सके, तो जीवन की समधिक दीर्घता कितनी सुलभ हो जाय!... ओह, अच्छी याद आई! आज तो शनिवार है। आज मुक़दमे फ़ैसला करने का काम उतना नहीं है, जितना इजराय डिक्रीज़ पर ऑर्डर देने का। तब कौन-सी असुविधा हो सकती है!......
कमलनयन ने कल अपने जो विचार व्यक्त किये, उनमें भावुकता अधिक थी। कवि में भावुकता होनी ही चाहिये। किन्तु फिर भी, उसके विचारों में कितनी तड़पन है! उसने कहा था—'हम संसार के क्षुब्ध, क्षुधित और त्रस्त प्राणी हैं। जो हमसे सहानुभूति रखनेवाले हों, वे आयें और हमीं से होकर हमारे साथ काम करें। अन्यथा उनकी मौखिक सहानुभूति हमारे लिए मनोरंजन का विषय ही रहेगी।' कितनी खरी बात उसने कही। सचमुच उसकी अनुभूति में बड़ी तीव्रता है। उसके भीतर का अभिमान कितना प्रखर है! वह किसी का उपकार ग्रहण करने की इच्छा नहीं करता, धूल में अपने आपको लपेटे रखकर, जौहरी की दृष्टि में संशय डालकर, वह अपनी रत्न-मण्डली में पहुँच जाने का अभ्यासी है। शक्तिशाली न होकर भी वह त्यागी है, निर्बल होकर भी वह समाज के उत्कर्ष-युग का निर्लिप्त समीक्षक है। तीस रुपये मात्र पर उसे अपने यहाँ अटका लेने पर मुझे लज्जा आती है। लेकिन प्रश्न यह है कि मैं कर ही क्या सकता हूँ! जहाँ भी देखो वहाँ, जिधर दृष्टि डालो उधर ही, हमारे ऊँचे-से-ऊँचे कला-कोविद आज उपेक्षा, दुस्संयोग और दुर्भाग्य की चक्की में पिस रहे हैं! एक कमलनयन की ही बात नहीं है! शकुन्तला की तबियत कुछ आज उद्विग्न-सी जान पड़ती है। रात को उसे ठीक तरह से नींद नहीं आयी। सम्भव है, उसके मन में भी कमलनयन के विचारों ने कुछ संघर्ष उपस्थित किया हो। उसने उसी क्षण कह भी तो डाला था—'अवश्य अवश्य महात्मन्, हमलोग हर प्रकार से आपकी सेवा करने के लिए तत्पर हैं।' उसने कह तो डाली यह बात; लेकिन इस बात में

उसकी दूरदर्शिता का समावेश नहीं हो पाया। उसने समझा नहीं कि कमलनयन के इस कथन का संकेत कितना भयानक है! जान पड़ता है उससे अब भी यह छिपा रह गया है कि उसके विचारों में जो स्फुलिङ्ग दृष्टिगत होते हैं, उनकी सृष्टि साम्यवाद से हुई है।"

इसी समय शकुन्तला नहाकर आ गई। नरेन्द्र भोजन के लिए उठकर उसके साथ हो लिया। पाकशाला के भीतर एक ऊनी कम्बल पर दोनों भोजन करने बैठ गये।

भोजन करते हुए नरेन्द्र बोला—"मैं समझता था, कमलनयन का जीवन समय की गति के अनुसार बदल गया होगा। लेकिन कल मुझे बोध हुआ, उसके भीतर की अग्नि ऊपर की राख से नाममात्र को ही दबी रह सकी है। विचारों में वह अब भी वैसा ही उग्र और निर्भीक है।"

शकुन्तला कुछ नहीं बोली। वह नरेन्द्र से उसके विषय में अभी कुछ और सुनना चाहती थी। इस लालसा में वह थी कि देखें, ये कमलनयन के सम्बन्ध में और क्या-क्या कहते हैं। इधर नरेन्द्र उसके भीतर के मर्म को पा गया। फिर भी वह दो मिनट तक मौन रहा। अन्त में उसी ने पूछा—"सिर का दर्द गया कि अब भी है?"

उन्मन शकुन्तला बोली—"अब तो वैसा नहीं है। नहा लेने से कुछ हलकापन आ गया है।"

नरेन्द्र बोला—"इसी तरह तबियत ख़राब हो जाती है। जहाँ तक सम्भव हो, नित्य-कर्मों में कभी अन्तर नहीं डालना चाहिये।"

अन्त में उठने से पूर्व नरेन्द्र बोला—"एक और बात है शकुन। कई दिन से मैं अनुभव कर रहा हूँ कि जीवन एक समर्पण है। जितना अपने लिए, उतना ही जगत् के लिए। कोरा आनन्द लक्ष्यहीन होता है। पहले अपनी बात कह दूँ: मुझे यदि कोई काम न हो, तो कदाचित् आगे दस वर्ष भी जीवित न रह सकूँ। कोरा सौन्दर्य भोग भी क्षयशील हो सकता है शकुन। कल्पना की उड़ान जितनी ऊँची होती है, मनुष्य उस उँचाई तक अपने

जीवन को साथ लेकर उड़ नहीं सकता। तात्पर्य्य यह कि जीवन को नाओं के अनुसार बनाने की चेष्टा करना एक भयंकर स्वप्न देखना है।'

शकुन्तला केवल सुनती रही। उत्तर में उसने कुछ कहा नहीं।

ग्यारह

दिन के चार बजे थे। ऊपर के कमरे में एक तखत पर बैठ यमुना मुन्नू का कुरता सी रही थी। बच्चे अभी स्कूल से लौटे कमलाबाबू कचहरी गये हुए थे। कमलनयन अपने कमरे में बैठा कुछ गुनगुना रहा था। आज बहुत दिनों के बाद उसे कविता लिख स्फूर्ति मिली थी। वह गा रहा था—

"आज मैंने जान पाया।
रावरे अरविन्द-पद की धूलि है यह अखिल माया।"

कविता पूरी करके कमलनयन, उल्लसित मन से, भाभी के पार कर बोला—"भाभी...भाभी!"

यमुना देवर का प्रफुल्ल मुख देखकर बोली—"कहो लल्ला, आ बड़े प्रसन्न देख पड़ते हो। जान पड़ता है, कोई खुशी की बात सुनाने हो।"

ललाट तक फैले हुए केशों की एक लट कमलनयन की दायीं के ऊपर आ पड़ी थी। एक हलका झकोरा देकर, उस लट को सु हुआ वह बोला—"हाँ भाभी, सचमुच आज मेरी प्रसन्नता का है। बहुत दिनों के बाद आज मैंने एक कविता लिखी है।"

किसी की खुशी रुपयों के ढेर-के-ढेर नोटों तक सीमित होती है। प्रियतमा के चुम्बन में आह्लादित होता है। कोई नवजात शिशु को गं पाकर पुलकित हो उठता है। पर सफ़ेद-सफ़ेद कागज़ के अन्तस्तल पर, काली-काली, कुछ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींच लेने से कोई प्रसन्न हो सकता है, व्यस्तता और आर्थिक संघर्ष के इस युग में, या

के हाहाकार में रत रहनेवाले, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सुजन, क्या जान सकेंगे!

यमुना बोली—"जाओ, तुम क्या पागलपन दिखलाने आये हो! कविता लिखते हो, और माना कि अच्छी ही लिख लेते हो, तो इससे क्या! कविता लिखने से पेट तो भर नहीं जाता। वह तो तभी भरेगा, जब कुछ खाया जायगा। और खाने को न हो, तो कविता भी भूल जाय! ऐसा यत्न करो, जिससे आगे के लिए कोई एक रास्ता दिखलाई पड़े।"

कमलनयन की आत्मा छटपटाने लगी! उसके मन में आया, इस दुर्दशा से तो आत्मघात करके मर जाना कहीं अच्छा है! एक शीतल निःश्वास छोड़कर उसने कहा—"अच्छा भाभी, ऐसा ही करूँगा!"

यमुना कहते तो कह गई। पर उसे स्पष्ट जान पड़ा—उसकी बात से कमलनयन को क्लेश बहुत पहुँचा। वह सोचने लगी—वह कविता लिखकर आया था। कितना प्रसन्न था वह! और अब मेरी बात से कितना दुखी हो उठा! तब वह बोली—

"वे आज तुम्हारा ब्याह कहने का ज़िक्र करते थे। कहते थे, कमल का विवाह अगर हो जाता, तो कितना अच्छा होता!...कुछ लोग शायद उनके पीछे भी पड़े हैं। यद्यपि अभी कोई तै नहीं हुआ, लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि अब वे इस सम्बन्ध में और देर-दार करना नहीं चाहते।"

कमलनयन भाभी की इस बात को इस समय किस रूप में ग्रहण करे? वास्तव में यह संवाद तो उसके लिए एक व्यंग्य है, एक आघात—वह उसके इस जीवन का उपहास कर रहा है। ओह! उसके शान्त स्वच्छ आनन पर यह जो म्लान छाया देख पड़ रही है, भीतर के हाहाकार में उसकी काया कैसी काली है, कैसी भयानक! अप्रतित उपालम्भ से उसका रोम-रोम जलने लगा। तब यकायक उसके मुँह से निकल गया—तुम भी क्या बातें करती हो भाभी! मेरी समझ में नहीं आता। आख़िर तुम चाहती क्या हो? क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं आत्मघात करके मर जाऊँ! नहीं तो तुम देखती ही हो कि अभी आमदनी का कोई स्थायी

जीवन को साथ लेकर उड़ नहीं सकता। तात्पर्य यह कि जीवन को कल्पनाओं के अनुसार बनाने की चेष्टा करना एक भयंकर स्वप्न देखना है।"

शकुन्तला केवल सुनती रही। उत्तर में उसने कुछ कहा नहीं।

ग्यारह

दिन के चार बजे थे। ऊपर के कमरे में एक तखत पर बैठी हुई यमुना मुन्नू का कुरता सी रही थी। बच्चे अभी स्कूल से लौटे न थे कमलाबाबू कचहरी गये हुए थे। कमलनयन अपने कमरे में बैठा हुआ कुछ गुनगुना रहा था। आज बहुत दिनों के बाद उसे कविता लिखने की स्फूर्ति मिली थी। वह गा रहा था—

"आज मैंने जान पाया।

रावरे अरविन्द-पद की धूलि है यह अखिल माया।"

कविता पूरी करके कमलनयन, उल्लसित मन से, भाभी के पास आकर बोला—"भाभी...भाभी!"

यमुना देवर का प्रफुल्ल मुख देखकर बोली—"कहो लल्ला, आज तो बड़े प्रसन्न देख पड़ते हो! जान पड़ता है, कोई खुशी की बात सुनाने आये हो!"

ललाट तक फैले हुए केशों की एक लट कमलनयन की दायीं ओर के ऊपर आ पड़ी थी। एक हलका झकोरा देकर, उस लट को सुधारता हुआ वह बोला—"हाँ भाभी, सचमुच आज मेरी प्रसन्नता का दि[न] है। बहुत दिनों के बाद आज मैंने एक कविता लिखी है!"

किसी का हर्ष रुपयों के ढेर-के ढेर नोटों तक सीमित होता है। को[ई] प्रियतमा के चुम्बन में आह्लादित होता है। कोई नवजात शिशु को गोद पाकर पुलकित हो उठता है। पर सफ़ेद-सफ़ेद काग़ज़ के अछूते टुक[ड़ों] पर, काली-काली, कुछ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींच लेने से कोई इतना प्रसन्न हो सकता है, व्यस्तता और आर्थिक संघर्ष के इस युग में, मान[ना]

के हाहाकार में रत रहनेवाले, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सुजन, क्या जान सकेंगे !

यमुना बोली—"जाओ, तुम क्या पागलपन दिखलाने आये हो ! कविता लिखते हो, और माना कि अच्छी ही लिख लेते हो, तो इससे क्या ! कविता लिखने से पेट तो भर नहीं जाता। वह तो तभी भरेगा, जब कुछ खाया जायगा। और खाने को न हो, तो कविता भी भूल जाय ! ऐसा यत्न करो, जिससे आगे के लिए कोई एक रास्ता दिखलाई पड़े।"

कमलनयन की आत्मा छटपटाने लगी ! उसके मन में आया, इस दुर्दशा से तो आत्मघात करके मर जाना कहीं अच्छा है ! एक शीतल निःश्वास छोड़कर उसने कहा—"अच्छा भाभी, ऐसा ही करूँगा !"

यमुना कहते तो कह गई। पर उसे स्पष्ट जान पड़ा—उसकी बात से कमलनयन को क्लेश बहुत पहुँचा। वह सोचने लगी—वह कविता लिखकर आया था। कितना प्रसन्न था वह ! और अब मेरी बात से कितना दुखी हो उठा ! तब वह बोली—

"वे आज तुम्हारा ब्याह करने का ज़िक्र करते थे। कहते थे, कमल का विवाह अगर हो जाता, तो कितना अच्छा होता।...कुछ लोग शायद उनके पीछे भी पड़े हैं। यद्यपि अभी कोई तै नहीं हुआ, लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि अब वे इस सम्बन्ध में अार देर-दार करना नहीं चाहते।"

कमलनयन भाभी की इस बात को इस समय किस रूप में ग्रहण करे ? वास्तव में यह संवाद तो उसके लिए एक व्यंग्य है, एक आघात—वह उसके इस जीवन का उपहास कर रहा है। ओह ! उसके शान्त स्वच्छ आनन पर यह जो म्लान छाया देख पड़ रही है, भीतर के हाहाकार में उसकी काया कैसी काली है, कैसी भयानक ! अप्रतित उपालम्भ से उसका रोम-रोम जलने लगा। तब यकायक उसके मुँह से निकल गया—तुम भी क्या बातें करती हो भाभी ! मेरी समझ में नहीं आता। आख़िर तुम चाहती क्या हो ? क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं आत्मघात करके मर जाऊँ ! नहीं तो तुम देखती ही हो कि अभी आमदनी का कोई स्थायी

सिलसिला तक जमा नहीं है। सोचता हूँ, ऐसी दशा में एक शिला गले में और लटका लेने की बात तुमसे कही कैसे जाती है।"

यमुना ने तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"बको मत। मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो। इसमें झंझट की कोई बात नहीं है। आमदनी का सिलसिला भी, जब उसका समय आयेगा, हो ही जायेगा। और जो कहो कि देवरानी के आ जाने से ख़र्च कुछ अधिक बढ़ जायगा, सो बात भी नहीं है। हम ग़रीब हैं सही, पर क्या खाने-पीने की भी कोई तकलीफ़ हमें हो सकती है!"

"क्यों नहीं हो सकती! गृहस्थी का सारा भार एक भैया के ऊपर ही तो रहता है। पर, क्या मैं इतना भी नहीं समझता कि उनकी यह अवस्था इतना अधिक परिश्रम करने की नहीं है! स्वयं कष्ट सहकर कितनी बड़ी आशा से उन्होंने मुझे जो पढ़ाया था, उसका फल क्या निकला!"

"कोई बुरा फल तो नहीं निकला।" नीचे किये हुए मुख को कुछ ऊपर करके, जैसे अपने कथन में अधिकाधिक दृढ़ता प्रदर्शित करने के अभिप्राय से, यमुना बोली—"एक तुम्हीं बेकार नहीं हो। तुम्हारे जैसे लाखों आदमी बेकार हैं। पर इससे क्या! दुनिया का कौन-सा काम बन्द हो गया!"

"दुनिया के सारे काम बन्द नहीं हुए; पर अगर बेकारी इसी तरह बढ़ती गई, तो सुख और शान्ति की ज़िन्दगी बितानेवाले लोग आगे चलकर अपने आपको कहाँ पायेंगे, धीरे-धीरे यह बात भी स्पष्ट होती जा रही है।"

"अरे जाओ, क्या बातें करते हो तुम भी। जब देखो तब इसी तरह के सिर पैर की बातें मैं तुम्हारे मुँह से सुना करती हूँ। अधिक पुस्तकों को पढ़कर और कुछ लोगों के बहकाने में आकर तुम्हारे विचार बदल गये हैं। पर मैं तो देखती हूँ, कि न तो लोगों की ज़िन्दगी में किसी तरह का फ़र्क़ पड़ा, न सड़कों की रौनक़ में ही किसी तरह की कमी आई। बल्कि देखती हूँ [illegible] ज़्यादातर [illegible] तो देखो कितनी नई इमारतें बन गईं

है ! और वे कैसी शानदार हैं ! उन्हें देखकर आँखें कैसी चकाचौंध में पड़ जाती हैं !"

"यह चकाचौंध हमारी उन्नति का लक्षण नहीं, हमारी कृत्रिमता, हमारे पाखण्ड और मिथ्या दम्भ की ही द्योतक है। आलीशान इमारतें बनवाना मैं बुरा नहीं मानता। लेकिन उसका भी समय होना चाहिये। जिस देश के किसान उत्तरोत्तर जीर्ण-जर्जर होते जा रहे हों; आये दिन जहाँ घोर दुर्भिक्ष के कारण लक्ष-लक्ष जन केवल भूख की ज्वाला शान्त न कर पाने के कारण मौत के मुँह में समा जाते हों; जिस देश के मज़दूर इहलीला समाप्त होने पर अन्त्येष्टि-संस्कार तक के लिए पैसा न छोड़ पाते हों, जिस देश के गाँव की नारियाँ पहनने के लिए इतने भी वस्त्र न पाती हों कि आवश्यकता पड़ने पर घर से बाहर निकल सकें, उसी देश के अमीरों की कोठियों में विलास और वैभव का ऐसा नग्न प्रदर्शन बराबर चलता रहा, तो भीतर और बाहर के इस वैषम्य को कौन सम्हाल सकेगा ?"

"तुम्हारी ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं तो सीधी-सी बात जानती हूँ। जो जैसी मेहनत करता है, वह वैसा ही फल पाता है। अमीरी भाग्य से ही मिलती है। हम अगर ग़रीब हैं, तो अमीरों की अमीरी के लिए हममें जलन क्यों हो ?"

कमल के अन्तराल में धधकती हुई भीम भावना ने आज बाहर निकलने का अवसर पाया है। आज वह सभी कुछ उगल डालना चाहता है। इस तरह उसका जी कुछ हलका हो जायगा। उसकी भाभी यह तो समझ पाये कि कमलनयन अगर बैठा ही रहता है, तो उसका बेकार बैठना भी उसके ज्ञान-क्षेत्र की संवृद्धि का ही साधक हुआ है। किसी तरह वह यह भी तो जान पाये कि कर्तव्य के जगत् में कमलनयन की स्थिति, एक साधारण व्यक्ति की होकर भी एक दानवी वीरता के रूप में, महान् होकर ही उन्मुख होना चाहती है।

तब उसने यमुना के इस कथन को शिकार की-सी दृष्टि से देखते

हुए कहा—"यह जलन अकारण नहीं है भाभी। यह इसलिए है कि एक ओर दरिद्रता और उसकी बेबसी, और दूसरी ओर पूँजीपतियों के वैभव के प्रदर्शन का यह अन्तर विधाता के विधान ने नहीं, हमारे वर्तमान सामाजिक संगठन से उत्पन्न हुआ है। हमारा अपना देश होता, हमारी अपनी शासन-सत्ता होती, तो हम ऐसे अनीतिमूलक वातावरण को सहन ही न कर सकते! हम अगर मनुष्य के अपने अधिकार भर समझ सकने की भावना इस त्रस्त समाज में भर सकें, तो आज हमारे देश का यह स्थिति बदल सकती है। तब न तो गाँवों के झोपड़े उजड़कर नगरों की आलीशान इमारतें बनें, न किसानों को भूखों मारकर लोग क्रीड़ा, नृत्य और कलहास की किलकारियों में लिप्त रहने का अवसर पायें। थोड़ी-सी अँग्रेजी पढ़ लिखकर हम समझ बैठते हैं कि हम बड़े आदमी हो गये हैं। पर हमारा बड़प्पन विश्व की दृष्टि में कितना उपहास-जनक है, यह भी क्या हम जानने का कभी अवसर पाते हैं! हम प्रसन्नता से पागल हो जाते हैं, यह जानकर कि हम पश्चिमी शिक्षा का आलोक पा रहे हैं। पर हमें चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिये यह जानकर कि हमने उसके गुणों को न अपनाकर अवगुणों का ही आलिंगन किया है।

"...हमें आज एक मित्र ने बतलाया है भाभी, कि देश के जिन मिलों को स्वदेशी मानकर गर्व से हम अपनी छाती तान लेते हैं, उन्हीं के मालिक इतने गिर गये हैं कि उनकी दुर्नीति-मूलक बातें सुनकर शर्म से हमारा मस्तक नत हो जाता है।...मान लो किसी मजदूर का हाथ मशीन में काम करते-करते उसमें कुचल गया है। अचेतन दशा में वह हॉस्पिटल में ले जाया जायगा। डॉक्टर उसे देखेगा, उसकी चिकित्सा करेगा। हाथ अगर अच्छा हो गया, तब तो कोई बात ही नहीं है। किन्तु यदि स्थिति प्रतिकूल हुई, तो उसका हाथ काट डाला जायगा। अब वह जीवन भर के लिए बेकाम हो गया। स्वभावतः उसे उसकी क्षतिपूर्ति का हरजा मिलना चाहिये। हमको मालूम हुआ है भाभी कि ऐसी दशा में [illegible] मिल तो उसकी क्षतिपूर्ति का हरजा उसके उत्तराधिकारी को

दे भी देते हैं। पर हमारे ये देशी मिलवाले उसे रुपया न देकर उससे मुक़दमेबाज़ी करते हैं!...पर यह तो एक ऐसा उदाहरण है, जो संयोग से, अंधकार चीर कर, प्रकाश के आगे फूट पड़ा है। पूँजीवादी सत्ता के इस राज्य में अर्थ के नाम पर कितना कलुष नित्य अर्जित किया जाता है, इसके देखने का हमें अवसर ही कहाँ मिलता है!

"केवल मज़दूर ही बेबसी की इस चक्की में नहीं पिसते भाभी, किसानों की भी ऐसी ही दुर्गति है। एक ओर मालगुजारी वसूल करने के लिए ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार और राजा लोग किसानों के घर, पशु, फ़सल और उनकी सम्पत्ति कुर्क कर डालते हैं; और फलतः उन किसानों का कुटुम्ब भिक्षुक बन-बन कर दर-दर मारा-मारा फिरता है! दूसरी ओर ऐसे अमीरज़ादों का रुपया फ़िल्म्स-स्टार्स की बाँकी-झाँकी के नाम पर स्वाहा होता है! बताओ भाभी, क्या तुम चाहती हो समाज का यह वैषम्य इसी तरह बराबर चलता रहे? मैं कहता हूँ, यह चल नहीं सकता—यह चलने नहीं दिया जा सकता।"

प्रच्छन्न विस्मय से यमुना बोली—"बात तो, ऐसा जान पड़ता है, तुम ठीक ही कह रहे हो; पर इसका इलाज हमारे पास क्या है? जो जैसा करता है, उसे उसका वैसा फल मिल जाता है। हमलोग कर ही क्या सकते हैं।"

"बस, यही बात मैं नहीं मानता भाभी"—कमलनयन अपने कण्ठ-स्वर को थोड़ा और तीव्र बनाकर बोला—"हम ऐसा क्यों सोचें कि हम कर ही क्या सकते हैं! हम यही क्यों न सोचें कि हम क्या नहीं कर सकते! आज ज़रूरत इस बात की है कि हमारी यह भावना प्रत्येक प्रकाशहीन कोठरी और जर्जरित झोपड़े के भीतर जा पहुँचे। प्रत्येक ग़रीब मज़दूर और किसान यह जान जाय कि उसके भी कुछ अधिकार हैं,—वह भी मनुष्य है, उसे भी मनुष्य की भाँति रहने का उतना ही अधिकार प्राप्त है, जितना संसार का सम्पन्न समाज आज भोग रहा है।"

पुलक मुद्रा में यमुना कहने लगी—"अच्छा अच्छा, मैंने आज समझा कि व्याख्यान देने का तुमने अच्छा अभ्यास कर लिया है। लेकिन यह व्याख्यान यहाँ न देकर कहीं किसी मजदूर-सभा में देते, तो अच्छा होता। ख़ैर, विवाह हो जाय, तब एक दिन अपनी सास को यही सब बातें सुना देना। इन बातों को सुनकर वे भी गद्‌गद् हो उठेंगी। सोचेंगी—मेरा दामाद केवल पढ़ा-लिखा ही नहीं, नेता भी है!"

कमलनयन थोड़ा मुसकराते हुए बोला—"जाओ भाभी, तुम भी हमारे साथ इस तरह मज़ाक करती हो...अच्छा, अब मैं अपने काम पर जाता हूँ।"

साइकिल उठाकर चलते समय वह स्वयं भी यह सोचने लगा—"सचमुच, मेरा कथन जान पड़ता है, प्लेटफ़ार्म पर देने योग्य व्याख्यान की भाँति लम्बा हो गया। मुझे यह ख़याल ही न रहा कि मैं किससे बात कर रहा हूँ!"

एक बार यह भी उसके मन में आया कि क्या मैं अभी तक बच्चा ही बना हूँ। जीवन के साधारण व्यवहारों में संतुलन आख़िर मैं कब सीखूँगा! और तब वह अपने आप एक प्रकार के लघुत्व की भावना से अभिभूत हो उठा।

बारह

नरेन्द्र जार्जटाउन हाई-स्कूल की मैनेजिङ्ग कमेटी का सभापति है। वह चाहता है कि कमलनयन को इस स्कूल में हिन्दी-अध्यापक के पद पर नियुक्त करा दे। पुराने अध्यापक बड़े ढीले-ढाले और मामूली योग्यता के व्यक्ति हैं। हेडमास्टर तो तैयार हो गये कि उनको अलाहदा भी कर दिया जाय, तो उन्हें कोई आपत्ति न होगी। पर नरेन्द्र ने एक अध्यापक और नियुक्त करने की राय दी। इसी विषय को लेकर एक दिन मैनेजिङ्ग कमेटी की बैठक हुई।

बैठक समाप्त होने पर नरेन्द्र बाबू जब बँगले पर पहुँचे, तो शकुन्तला

बाहर टहलती हुई उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। इधर नरेन्द्र ने कार खड़ी की, उधर वह झट से उसी ओर मुड़कर उनके निकट जा पहुँची। कार से उनके उतरते ही उद्दीप्त जिज्ञासा से उनसे पूछा—"क्या हुआ!"

चिन्ताशील मुद्रा में नरेन्द्र ने उत्तर दिया—"हेडमास्टर साहब की एक Technical mistake के कारण कुछ नहीं हो सका। नोटिस में पृथक् रूप से इस विषय का उल्लेख ही नहीं किया गया था। अब एक बार नोटिस जब फिर सरकुलेट Circulate हो लेगा, तभी कुछ निश्चय हो सकेगा।"

कई दिन से शकुन्तला के मन में एक प्रकार की नवल उमंग लहराने लगी थी। उसने अपने अन्तःकरण में एक चित्र खींचने की कल्पना की थी। पर नरेन्द्र के इस कथन से उसका वह कल्पना-चित्र धूमिल पड़ गया। उस चित्र में उसने कितने मनोरम रंगों की सृष्टि की थी, उसकी कैसी महत्तम शोभा थी! आः!—कैसी निर्दयता के साथ वह शोभा छिन्न-भिन्न कर डाली गई!

नरेन्द्र ने शकुन्तला की म्लान-मुद्रा को देखा! इस मुद्रा की सार्थकता उसके लिए यद्यपि नयी नहीं है, तो भी आज इसमें उसे एक 'किन्तु' झलक पड़ा है। नरेन्द्र अपने लिए कभी नवीन नहीं बना। कोई ऐसा भाव उसके जीवन से कभी नहीं लिपटा कि उसे अपने आप पर अविश्वास करने का अवसर मिला हो। तब आज की यह बात उसके मानस में क्यों ऐसे दुर्दान्त हो उठी है! मनुष्य-मात्र के प्रति स्नेह की चरम अनुभूति ही वह अपने आप में देखता आया है। आत्मीय जनों के साथ उस स्नेह की एक ऊर्ध्वमुखी स्थिति की रूप-रेखा भी उसके विवेक-तल को स्पर्श कर पाती है। परन्तु इससे भी आगे नारी-प्रकृति में कहीं कोई एकान्त निष्ठा है, यह बात आजतक उसके लिए दुर्बोध क्यों रह सकी, आज यही वह जान लेना चाहता है।

कोट उतारकर खूँटी से टाँग दिया गया है। जूते के फीते नौकर खोल रहा है। शकुन्तला चुपचाप खड़ी है। वह नरेन्द्र को देखती है और अपने

को भी। उसका मन कहता है—"अब ये कुछ कहेंगे, कुछ पूछेंगे और अपनी किसी प्रकार की कोई उलझन भी प्रकट करेंगे, लेकिन कब! उनका यह मुख तो कुछ कहने को वैसा आतुर नहीं प्रतीत होता। तब जान पड़ता है, कोई और विशेष बात नहीं हुई है। अच्छा, अब समझी, कोई पेंच पड़ गया है। कोई परेशानी है। तभी गुमसुम हैं। बात ही ऐसी है। मैं क्या कम परेशान हूँ। परन्तु ऐसी भी क्या परेशानी! जो बात आज नहीं हो सकी, वह अधिक-से-अधिक मास डेढ़-मास तक टल सकती है! ऐसी कोई निराशा की बात भी नहीं है।...फिर भी क्या हुआ, विशेष प्रयास के पश्चात् प्रतिफल की धूमिल स्थिति देखकर चित्त पर उसका प्रभाव पड़ना आवश्यक हो ही जाता है। अरे! इज़ीचेयर पर लेट रहे हैं और मैं खड़ी हूँ! अबतक मैं बोली भी नहीं। अरे वाह! मैं भी खूब हूँ!"

उसके मन में कुछ क्षण पहले जो उद्विग्नता साकार हो पड़ी थी, इस समय उसमें उसकी म्लान छाया ही अवशिष्ट रह गई थी कि तत्काल उसने अपने आपको एक अकल्पित स्थिति में पाया। उसे बोध हुआ, जैसे वह कहीं खो गई थी। तब शकुन्तला अपनी अमल धवल दन्तमुक्ताएँ अधरों के मध्य से झलकाती हुई प्रकृत चटुलगति से बोल उठी—"अरे! तो ऐसी चिन्ता की इसमें क्या बात है! जो कुछ होगा, देखा जायगा। चलो उठो, मैं कब से इन्तज़ार कर रही हूँ। समझती थी, जल्दी लौटोगे! पर जान पड़ता है, वितण्डावाद छिड़ गया, तभी देर हो गई।"

—"ओह! ऐसी मंदाकिनी-सी नारी को मैं अभी दुरूह समझने लगा था। इसी चिरजाग्रत कल्लोलिनी के प्रति मेरी दानवी वृत्तियों ने विद्रोह की अग्निशिखाएँ चतुर्दिक उद्दीप्त करने का कल्मष संचितकर मेरे ही मुख पर पोत डालने की चेष्टा की थी! मनुष्य के भीतर संशय के रूप में यह कैसा दुर्लंध्य तक्षक है! मन के दुर्बल अवलम्ब का आभास मात्र पाकर वह उठ-उठकर फूत्कार कर उठता है!" सोचते हुए नरेन्द्र अपने सूखे कण्ठ को समधिक स्पष्ट करने के अनन्तर उठकर चल खड़ा हुआ। फिर आवेश में आकर बोला—"यह भटनागर बड़ा धूर्त है! पहले तो हेडमास्टर साहब पर

व्यक्तिगत आक्षेप कर बैठा। फिर जब देखा कि मुमकिन है, मामला तै ही हो जाय, तब दूसरी चाल चल गया। इस साले को अबकी बार मैनेजिङ्ग कमेटी से निकाले बिना न मानूँगा। बेईमान है साला!"

शकुन्तला खिलखिलाकर हँस पड़ी। और उसी उत्फुल्लगति से बोली—"यह नई बात आपने कही।"···फिर क्षणभर स्थिर रहकर उसने कहा—"दुनियाँ में कुछ लोग इसी दुष्ट प्रकृति के होते हैं। न तो वे ख़ुद कोई शुभकार्य कर सकते हैं, न औरों को ही करने देते हैं। प्राचीनकाल में दैत्य लोग भी तो देवतों के यज्ञ में विघ्न डालते थे।"

नरेन्द्र यह सब कह तो गया कि भटनागर साला है और बेईमान है। और शकुन्तला ने उसे दैत्य भी बना डाला। तो भी नरेन्द्र को प्रतीत हुआ, वह अभी सत्य से दूर ही खड़ा है। माना कि वह शुभ कार्य करने जा रहा है, तो भी अशुभ के प्रति उसकी घृणा का क्या अर्थ होता है! अशुभ, विचारों के सीमाहीन अगाध में, कहाँ पर क्या है, इसे यथार्थ में समझ सकने की प्रणाली उसकी स्वनिर्धारित ही तो है! और भटनागर विरोधी तत्वों का ही स्वरूप है, तो वह हमारे लिए कुत्सा का पात्र क्यों हो! फिर उसका अपना दृष्टिकोण इसीलिए क्यों निर्बल हो कि वह मेरे प्रतिकूल है!"

तब उसने कहा—"लेकिन उसकी बातें सभी तर्क-संगत थीं, शकुन। मुझे उसी के पक्ष में रूलिङ्ग देनी पड़ी।"

अगाध विस्मय में डुबकी ले-लेकर, उछलकर, शकुन्तला बोल उठी—"अच्छा! तुमको रूलिंग भी देनी पड़ी और उसी के पक्ष में! यह ख़ूब रही!"

पाकशाला में पहुँचकर, अपने आसन पर बैठते हुए नरेन्द्र बोला—"हाँ शकुन, यही मैं बड़ी देर से सोच रहा हूँ। उस समय तुम यदि उपस्थित होतीं, तो उसकी बातों से प्रभावित हुए बिना न रहतीं।"

शकुन्तला अत्यन्त गम्भीर होकर कहने लगी—"इसमें उसकी तर्कना-शक्ति का उतना ज़ोर चाहे न हो, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे आप स्वतः अपनेआपही से उलझ रहे हैं। न्यायालय में निरन्तर

विचार-मग्न रहते-रहते अपराधी की ओर ही अधिकतर झुकने का आपका अभ्यास पड़ गया है।"

"ऐसी बात नहीं है शकुन।" नरेन्द्र धीरे-धीरे गम्भीर होता हुआ बोला—"सत्य कितनी कठोर वस्तु है, इसका अनुभव अभी तुमको हो नहीं पाया है। मैं जो कहता हूँ, वह भी सत्य है—तुम जो कहती हो वह भी सत्य है—परन्तु इन दोनों सत्यों के भीतर मिथ्या क्या है, यह भी हमको विचार करना पड़ता है। फूल में भी रस है, पत्ती में भी रस है। पर फूल और पत्ती के पृथक्-पृथक् रसों में कौन तत्व मधु का है, और कौन सौरभ और पानी का, यह भी हमको खोजना पड़ता है। भटनागर एकदम से असत्य ही कहता है, अनर्गल ही बकता है; हम समझना चाहें तो समझकर अपने मन को सन्तोष दे सकते हैं। पर भटनागर के असत्य में कितना सत्य है, यह भी निरी उपेक्षणीय स्थिति है, ऐसा समझने की विवेकशीलता मैं अभी तक पा नहीं सका। अपने मन की यथार्थ स्थिति छिपाकर मैं रह नहीं सकता। इसीलिए बड़े मंथन के पश्चात् मैं यह बात तुमसे कह सका हूँ।"

प्रच्छन्न उद्विग्नता से शकुन्तला यकायक अवसन्न हो उठी। मन कुण्ठित हो जाने के कारण उससे थोड़ा-सा ही भोजन किया जा सका। नरेन्द्र की दृष्टि भी इस पर गई, किन्तु उसने कुछ कहा नहीं। हाँ, उसके साथ ही वह भी उठ खड़ा हुआ।

तेरह

कमलाबाबू अभी कचहरी से नहीं आये हैं। कमलनयन अपने ट्यूशन पर गया है। चुन्नू मुन्नू को स्कूल से आये देर हुई। इस समय दोनों झगड़ रहे हैं। झगड़े का विषय बड़ा गम्भीर है। चुन्नू जानता है कि चचा को पहली तारीख़ को तनख्वाह मिलती है। वह सोचता है कि यह बात चचा ने मुझसे ही बतलाई है, और किसी से नहीं। इसीलिए वह

मन-ही-मन बड़ा ख़ुश है; क्योंकि इसके साथ-ही-साथ एक और छिपी बात है। उसने निश्चय कर लिया है कि उस बात को वह किसी को नहीं बतलायेगा—मुन्नू को भी नहीं। वैसे चाहे वह उसे बतला भी देता, पर मन्नू उससे झगड़ता जो है, इसी से वह उसे नहीं बतलाना चाहता है। लेकिन कोई भी बात हो, चुन्नू के भीतर वह सोती ही बनी रहेगी, यह कैसे सम्भव हो सकता है! जब तक उसका संशय वह मुन्नू के मन में आरोपित नहीं कर देता, उसमें एक प्रकार का कुतूहल, एक उद्दाम जिज्ञासा उत्थित नहीं कर देता, तब तक उसके मन को तृप्ति कैसे हो सकती है! इसीलिए उसने मुन्नू के भीतर एक संशय डाल दिया है।

चुन्नू जब स्कूल से लौटकर घर आया, तो आते ही उसने मुन्नू के सामने ही अपना रूप बदल दिया। कोट उतारकर यमुना के सामने ले जाकर उसने कहा—"कल से मैं यह कोट पहनकर स्कूल नहीं जा सकता। किसी काम का इसका कपड़ा नहीं है। न तो रंग ही अच्छा है, न यह मुलायम है। और लड़के कितने अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर आते हैं; पर मुझे यह गूदड़ पहनने को दिया जाता है! हुँ!!"

मुन्नू बोला—"अम्मा हम भी कल से नया कोट ही पहन कर जायँगे। चाहे जो हो जाय।"

यमुना मुन्नू की बात का अन्तिम वाक्य सुनकर हँस पड़ी। बोली—"वाह! आज तुम लोग अच्छी सलाह करके चले हो! जानते हो, नया कोट बनवाने में कितने रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं! मैं तो आज अभी बनवा दूँ, लेकिन रुपये भी तो होने चाहिये।"

मुन्नू बोला—"हूँ। आज रुपये नहीं हैं, तो कल तो हो जायँगे। बस जैसे ही रुपये मिलें, वैसे ही हमारे लिए नया कोट सिल जाना चाहिये।"

यमुना को किसी बात का ख़याल नहीं है। कल कहाँ से रुपये आ जायँगे, अकस्मात् वह यह बात सोच नहीं सकी। और चुन्नू उसकी मुद्रा से ताड़ गया कि इनको भी वह बात मालूम नहीं है। तब फिर बोला—"अच्छा, अगर रुपये आ ही जायँ, तब तो बनवा दोगी!"

मुन्नू बोला—"रुपये तुम्हारे पास बहुत-से रक्खे हुए हैं। बाबू लाते हैं। वे सब तो ख़र्च हो नहीं जाते। कुछ-न-कुछ ज़रूर बचते उन्हीं में से निकालकर हमको कोट बनवा दो।"

मुन्नू को अलग ठेल देने का प्रयत्न करते हुए चुन्नू बोला—" उधर, पहले हमको अपनी बात कह लेने दो।"

मुन्नू बिगड़ उठा। बोला—"तुमको क्यों पहले अपनी बात क दूँ—मैं ही क्यों न कह लूँ?"

चुन्नू को जैसे एक नादिर मौक़ा मिल गया हो। उसके मुँह से नि गया—'अच्छा, कह लो तुम्हीं पहले अपनी बात। देखें, तुम कहते हो! कुछ मालूम भी है बच्चू तुमको कि कहोगे ही!"

अब मुन्नू चुप रह गया। एक नवीन संशय उसके भीतर जा प उसकी चेष्टा म्लान हो गई। एकदम से वह अप्रतिभ हो गया। अ के पास से आकर वह बाहरी कमरे में जा बैठा। वह चुप था। दरव की ओर से आने-जानेवाले पुरुषों को वह ध्यान से देखने लगा। उधर से निकलता, तो वह यही समझता—बस, ये चचा ही हैं। पर वह कोई और पुरुष सिद्ध होता, तो फिर सोचता—बस, अबकी बार वे निकलेंगे। फिर जब वह आगे का पुरुष भी उसका चचा न बन पाता, वह सोचने लगता—ये न सही, अब के तो ज़रूर निकलेंगे।

इसी प्रकार मुन्नू प्रत्येक बार अपने चच्चा को ही आगन्तुक खोजता और अवसन्न रह जाता। वह सोचता, वे पैण्ट पहनकर जाते और साथ में साइकिल रहती है। पहले पहल वे दिखलाई न देकर उ साइकिल का अगला पहिया ही दिखलाई देता है। फिर हैंडिल, फिर उसकी इस परख में कोई भूल नहीं है, इसका वह दृढ़ निश्चय रखता दरवाज़े पर की सड़क ऐसी अधिक चौड़ी नहीं है। कमरे में बैठा हु खुली खिड़की से, वह सड़क पर आने-जानेवाले लोगों को पूरी तरह लेता है। मोटर, तांगा, इक्का, साइकिल और पुरुष-स्त्री-बच्चे सभी वह देखता है; लेकिन कौन कह सकता है कि वह सभी को देखता

सच पूछो तो वह केवल अपने चचा को देखता है। तो वह सबको देखता है और चचा को भी देखता है। अब प्रश्न यह है कि सबको देखने में वह चचा को देखता है, अथवा चचा को देखने में सबको देखता है?

मुन्नू अपने चचा की प्रतीक्षा में है। और इस प्रतीक्षा में बैठे-बैठे उसे आध घण्टा हो गया है। पर उसका यह आध घण्टा ऐसी जल्दी समाप्त नहीं हुआ है। इस आध घण्टे में उसके एक-एक क्षण की गणना है—एक-एक पल का इतिहास है। इस इतिहास के पृष्ठ ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों मुन्नू का चचा उसके निकट आता जाता है। अब तक नहीं आये, तो अब आते ही हैं—अब उनके आने में बस ज़रा-सा ही विलम्ब है। वे आये नहीं कि उसका कार्य्य-क्रम शुरू हो जायगा। उनसे पहले-पहल वही बातें करेगा। वशभर वह उस समय उनसे और किसी को बातें न करने देगा। उसने एक कार्य क्रम निश्चित कर लिया है। वह पहले अमुक बात कहेगा, फिर अमुक कहेगा। पहली बात इस ढंग से कहेगा कि चचा पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा। दूसरी बात में वह उससे भी अधिक ज़ोर भर देगा। वह कहेगा कि दद्दा अपना कोट बनवाने के लिए अम्मा के आगे मचल रहे हैं, और मेरी बात कोई सुननेवाला ही नहीं है! फिर वह कहेगा कि तुम्हीं तो कहा करते थे कि चुन्नू पाजी है तब ऐसी क्या बात है कि वह पाजी भी है, तो भी उसी के लिए पहले कोट बनवाया जाय, और मेरे लिए कोट बनवाने की कोई बात ही न सुने, जब कि मैं पाजी कभी नहीं बना—सदा मुन्नू ही रहा हूँ!"

चचा का रास्ता देखते-देखते जब उसकी दृष्टि थक गई, तब उसे निश्चय हो गया कि अब वे देर से आवगे। तब एक बार उसका चित्त अस्थिर हो गया। उसे ऐसा जान पड़ा कि उसकी अम्मा ने चुन्नू की माँग स्वीकार कर ली है और चुन्नू अभी मुझे चिढ़ाने और नीचा दिखाने के लिए उछलता और यह कहता हुआ आने ही वाला है कि कल मेरे लिए नया कोट बन जायगा, ज़रूर ही बन जायगा। तब निराशा की काली छाया उसके रोम-रोम में समाविष्ट हो उठी। उसका कण्ठ भर आया।

उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े ! वह सिसक-सिसककर रोने लगा !!

इसी समय चुन्नू वहाँ आ पहुँचा। अब उसे होश आया कि उसने उसका अपमान किया है। उसने दयार्द्र मन से पूछा--"क्यों रोते हो मुन्नू ?"

मुन्नू कुछ बोल न सका।

अब चुन्नू को निश्चय हो गया--उसीने उसे रुलाया है। उसके निकट जाकर उसका आँसुओं से भीगा हुआ हाथ पकड़कर चुन्नू ने ज्योंही कहा--"रोओ मत मुन्नू। सुनो, इधर मेरी तरफ़ देखो। तुमको एक बात बताऊँ।" त्यों ही हाथ झटककर, आरक्त आँखों से, चुन्नू की ओर कठोर मुद्रा से देखते हुए, मुन्नू बोला—"मुझसे मत बोलो। अम्मा के आगे तो झिड़क दिया, अब मुझे यहाँ मनाने चले हो ! जाओ, पहनो जाकर अपना नया कोट। मुझे ऐसा कोट न चाहिये।"

इसी समय कमरे के बग़ल से साइकिल के आने का शब्द हुआ। साइकिल रखकर कमलनयन सीधा उस कमरे में चला आया। आते ही उसने चुन्नू से पूछा—"क्यों रो रहा है ?"

चुन्नू म्लान मुख, नीचे की ओर दृष्टि किये, अपनी दोनों हथेलियों को एक दूसरे से मिलाये, अपराधी की साक्षात् मूर्ति बना हुआ, खड़ा रहा। उसके जी में आया--"वह सारी बात स्पष्ट बतलाकर अपना अपराध स्वीकार कर ले। पर वास्तविक अपराधी के अन्तस्तल में कभी-कभी जो तीव्र ग्लानि फूट पड़ती है, उसमें इतनी क्रियाशीलता ही कहाँ रह जाती है कि वह निर्मल मन से, सीमित शब्दों में, अपने अपराध की कथा कह सके। जान पड़ता है, इसीलिए चुन्नू इच्छा रखते हुए भी कुछ कह नहीं सका।

इधर अपने चचा को पाकर मुन्नू और भी अधिक दुःख के साथ रो पड़ा।

कमलनयन उसके निकट ही खड़ा था। दोनों हाथ बढ़ाकर उसने उसे

बात समाप्त करते-करते यमुना का गोरा उज्ज्वल मुख जैसे थोड़ा औ भी उज्ज्वल हो गया !

"हूँ-हूँ, तुम भी उन दिनों की बातें आज अब इस किनारे पहुँचनेवा किश्ती के वक्त सुनाने बैठी हो ! उन दिनों की याद करके कितनी भीतर ही भीतर रो चुका हूँ, सो क्या फिर से सुनना चाहती हो ! रही म करने की बात, सो उसे तो स्त्रियों पर मैंने इसीलिए ढुलका दिया था देखें तुम इसे किस तरह ग्रहण करती हो ! पर जिस बात को छू सकने लिए मैंने वह इशारा किया था; देखता हूँ, तुम उसमें आदि से अन्त तर-बतर हो रही हो ! क्यों, हो रही हो न ?" कमला बाबू ने कहा थोड़ा-सा उल्लास, थोड़ी-सी मस्ती, अपने चारों ओर फैला दी !

उसी मस्ती में डूबती-उछलती हुई-सी यमुना बोली—"अच्छा, तो तर-बतर कहते हो। ख़ैर, कह लो। मैं जैसी कुछ हूँ, हूँ। पर अपने को क्यों नहीं देखते ? छेड़छाड़ कर ही बैठते हो ! कहो, क्या कहती हूँ ?"

कमला बाबू इस पर कुछ कहना चाहते तो कह सकते थे। पर कुछ बोले नहीं। शायद इसलिए कि इतना ही काफ़ी है। और श इसलिए कि इतने की भी वैसी ज़रूरत न थी। किन्तु क्या वे इतना सोच रहे थे ? वे सोचते थे—"ज़रूरत की बात भी अजीब है। यह सं जैसा कुछ बना है, क्या उसके बनाव में ज़रूरत की ही खासियत बे-ज़रूरत, या यों ही अपने आप, किसी बात के हो जाने में कोई ही नहीं है ? तब इन बातों की ज़रूरत न हो, या ज़रूरत-बे-ज़रूरत सवाल ही इसमें न उठता हो, तो भी क्या इसीलिए ये बातें फ़ि ठहरेंगी !"

इसी समय यमुना कहने लगी—"आज बबुआ से मैंने ब्याह चर्चा की थी। इसपर वह बहुत बिगड़ खड़ा हुआ। कहने लगा—" समय जब कि कहीं भी उसका कोई सिलसिला नहीं जमा, तुमको ब्याह चर्चा करते हुए शरम भी नहीं आती।"

इसपर कमलाबाबू गम्भीरता से बोल उठे—"वह कहता तो ठीक ही है। लेकिन तो भी उसका व्याह कर ही डालने की इच्छा होती है।"

स्वामी का दूसरा पैर यमुना अभी दाब ही रही थी कि उन्होंने कह दिया—"जाओ, अब तुम भी सोओ। दिनभर की हारी-थकी हो। कितनी बार कहा कि अब अपनी ड्यूटी के इस हिस्से को रहने ही दो। बहुत तो निभाया। अब इस उमर में यह सोहता भी नहीं है। तो भी तुम मानती नहीं हो।"

यमुना जब कभी स्वामी से इस तरह की बातें सुनती है, तब उसके भीतर का सुधार्णव उसके तट तक आकर भी रुक नहीं पाता, वह उसे सदैव अपने में भर लेना चाहती है। व्याह हो जाने के पश्चात् जिस दिन से उसने अपने स्वामी को समझा पाया है, इन चरणों की सेवा में उसने कभी कोई त्रुटि नहीं आने दी है। वह अस्वस्थ भी रही है, तो भी आई अवश्य है, फिर चाहे वह इन्हें छूकर ही चली गई हो। उसका ईश्वर में अटल विश्वास है, पर इन चरणों की सेवा में उसका विश्वास कहीं पर भी कुण्ठित नहीं है। उसका नवविवाहित जीवन एक गुड़िया की तरह था। इस परिवार के लिए वह केवल देखने-सुनने और दुलराने की चीज़ थी। इसके पश्चात् उसका वह जीवन आया, जिसमें उसने एक नये प्रकार की आँधी का अनुभव किया। उसमें एक नशा था—एक पागलपन, एक मस्ती थी—एक रागिणी। फिर उसकी दृष्टि अपने चारों ओर गई। उसे अपना कुछ ज्ञान हुआ। तब उसे जान पड़ा—जीवन में रस नाम की जिस चीज की कल्पना उसने की थी, वह अभी तक उसके निकट आ नहीं सका। तब स्वतः उसने उसके निकट पहुँचने की चेष्टा की। अभी तक स्वामी के चरणों की सेवा वह अकल्पित वांछा से करती आ रही थी। आज उसने अनुभव किया; वही उसकी साधना है। उसे विश्वास है कि साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। उसने अपने उस दृढ़तर विश्वास की प्रतिष्ठा अभी अपने भीतर कर ही पाई थी कि उसके जीवन का सूनापन

जाता रहा। मञ्जरियों का सौरभ तो उसने पाया ही था। अब उस रसाल-वन का भी अनुभव किया! इस प्रकार स्वामी के जिन चरणों की सेवा से उसके जीवन का 'अथ' निर्मित हुआ था, उसकी कामना है। उन्हीं चरणों की सेवा करते-करते उसकी 'इति' का भी निर्माण होता चले। तब निर्विकार गति से यमुना बोली—"कितने दिन के लिए अब इसे छोड़ दूँ?" और उठकर अपनी चारपाई पर चली आई।

कमलाबाबू के मौन मानस को यमुना के इन शब्दों ने वैसा ही तरंगित कर दिया, जैसे किसीने प्रशान्त सरोवर में एक कंकड़ी फेंक दी हो और उससे एक 'टभ' सा शब्द गुञ्जित हो उठा हो।

थोड़ी देर मौन रहकर, करवट बदलने के बाद, कमलाबाबू ने कहा—"ब्याह तो उसका अब कर ही डालना है, चाहे जो हो।"

यमुना बोली—"मेरी चलती, तो अब तक कभी का हो गया होता।... आज उसने इस महीने की तनख्वाह के तीस रुपये मुझे दिये हैं, उन्हीं में से चुन्नू-मुन्नू के लिये दो कोटों का कपड़ा ख़रीदकर दर्ज़ी को सिलने दे दिया है।"

प्रफुल्लित होकर कमलाबाबू बोले—"अच्छा! आज तो अभी ३१ तारीख़ हुई है। तब तक तनख्वाह भी मिल गई! वाह! नौकरी की क्या बात है!"

पन्द्रह

कई महीने बाद—

तीन दिन से शकुन्तला अस्वस्थ है। उसे ज़ोर का ज़ुकाम हो गया है। इसीलिए उसके शरीर और मस्तक में पीड़ा है; और साथ में थोड़ा ज्वर भी। दो दिन से नरेन्द्र कोर्ट नहीं जाता। कमलनयन शाम को अपने ट्यूशन पर तो आता ही है, शकुन्तला के मनोविनोद के लिए दोपहर को भी

जाता है। जार्डटाउन हाईस्कूल के हेडमास्टर सरोजमोहन चटर्जी भी तीन बजे आ जाते हैं। चौकड़ी पूरी हो जाने पर ताश का खेल होता शकुन्तला को ताश खेलने का बड़ा शौक़ है।

ताश-पार्टी की इस बैठक का दूसरा दिन था। फ़र्श पर दो गद्दे बाकर, फिर दरी और फिर सफ़ेद चद्दर बिछाई गई थी। ानुसार बैठने के लिए मसनद और कई तकिये तथा बदन ढकने आवश्यकता हो, तो दो शाल पड़े थे। तश्तरी में पान, इलायची, ंत्री, सुरती तथा एक डब्बे में सिगरेट और एक माचिस-बाक्स अलग ा हुआ था। चारों ओर अगरू धूम्र की भीनी-भीनी गन्ध उड़ थी।

खेल कोट-पीस का खेला जा रहा है। शकुन्तला और नरेन्द्र एक ओर हैं और कमलनयन और चटर्जी महाशय दूसरी ओर। चटर्जी महाशय न्तला के लिए नये नहीं हैं। टेनिस में सदा ही वे सम्मिलित होते रहे वे बंगाली हैं, फिर भी हिन्दी भाषा में उनकी गति है।

इन चटर्जी महाशय के कार्ड्स वितरित कर देने के अनन्तर नरेन्द्र म्प आउट किया—पान। और साथ ही पान का इक्का चल दिया। न्तला की साभिप्राय दृष्टि नरेन्द्र की ओर जा पहुँची। कमलनयन ने लक्ष किया। तीनों साथियों ने चाल चल दी। अभी तक कोई ख़ास ा न थीं। नरेन्द्र ने अब पान का पंजा चल दिया। चटर्जी महाशय ने पर अट्ठा लगा दिया। अब शकुन्तला की बारी थी। उसने बादशाह दिया। अब कमलनयन ने अनुभव किया, पान का इक्का जब नरेन्द्र चला ही था, तब शकुन्तला ने तुरन्त उसकी ओर दृष्टि-क्षेप किया था। नो उस दृष्टि में उसने अपने पास इसी पत्ते के होने का संकेत किया था। के मुख पर तरल हास मुद्रित हो गया। इसी समय शकुन्तला की दृष्टि की ओर जा पड़ी और उसके अधर-पल्लव भी प्रस्फुटित हो पड़े। इसी य कमलनयन ने भी चाल चल दी। उसने चाल तो चल दी, पर वह विमर्श में पड़ गया। शकुन्तला अस्वस्थ है और उसका मनोरंजन हो

रहा है। उसे इसी समय कानपुर के एक मज़दूर का स्मरण हो आया।

उसका नाम रामलाल था। बेचारा अकेला रहता था अपने का में। उसकी स्त्री मर चुकी थी। एक लड़की ही रह गई थी। वह अप ससुराल गई हुई थी। उस लड़की को उसके स्वामी ने एक दिन पीट दि था। किसी तरह लड़की ने पिता रामलाल के पास इसकी सूचना दे दं रामलाल वहाँ जाकर लड़की को अपने साथ लिवा लाया।

लड़की अभी आठ दिन ही अपने पिता के साथ रह पाई थी कि य यक बीमार पड़ गई। उसे डबल निमोनिया हो गया। रामलाल रात-रात तो उसके पास बैठा रहता, दिन को मिल में काम करता। एक दिन लड़की की दशा अधिक बिगड़ गई। रामलाल ने छुट्टी लेनी चाही, पर छुट्टी नहीं मिली। विवश होकर उसे काम करना ही पड़ा। काम तो करना पड़ा, पर काम में उसका जी न लगता था। काम करते-करते कभी ऊँघ जाता, कभी अत्यधिक अधीर हो उठता। किसी तरह उसने दिन पार किया।

सायङ्काल रामलाल जब अपने क्वार्टर में पहुँचा, तो उसकी आँखं सामने अन्धकार छा गया। लड़की मर चुकी थी!

रामलाल के पास जो दो-चार रुपये थे भी, उन्हें वह इस लड़की चिकित्सा में फूँका चुका था। अब इस समय उसको उस लड़की संस्कार करने का भी सुभीता न था। वह रो उठा! लेकिन रोने से उर परिस्थित में क्या अन्तर पड़ता! वह उठा और अपने दामाद के दौड़ गया।

सरदी के दिन थे और हवा भी ज़ोर की चल रही थी। खैर, वि तरह वह चौदह मील का सफ़र तै करके रात को अपने दामाद के यहाँ पहुँचा। दामाद को लाकर वह दस बजे कानपुर आ सका। तब किसी त उसका संस्कार किया जा सका। दूसरा दिन इसी तरह बीत गया। बि का समय था, मिल में दरख्वास्त भेजने का उसे ख्याल ही न रहा।

तीसरे दिन जब रामलाल अपने काम पर गया, तो उसे मालूम हु

कि एक दिन ग़ैरहाज़िर रहने के कारण तीन रुपये का और पिछले दिन काम ख़राब करने के कारण पाँच रुपये का, इस तरह कुल मिलाकर उसपर आठ रुपये का फ़ाइन हुआ है।

रामलाल बहुत गिड़गिड़ाया, उसने रो-रोकर बतलाया कि उसकी लड़की बीमार थी, रात-रातभर वह उसके पास बैठकर जागता था, और दिन को मिल में काम करता था। उसने छुट्टी माँगी, उसे छुट्टी नहीं दी गई। उसकी लड़की मर भी गई। अब उसपर इस तरह फ़ाइन किया जायगा, तो वह कैसे जियेगा! असिस्टेंट मैनेजर ने इसके जवाब में कहा कि यह फ़ाइन माफ़ हो नहीं सकता। यह तो उसकी तनख़्वाह से कट ही जायगा। और अब अगर वह चुपचाप अपने काम पर नहीं जायगा, तो उसे बरख़ास्त भी तुरन्त कर दिया जायगा।

और बस उस दिन ऐसी ज़िन्दगी से ऊबकर उसने आत्मघात कर लिया।—अफ़ीम खाकर उसी दिन वह भी सदा के लिए सो गया।

इसी समय शकुन्तला ने कहा—चलिये मास्टर साहब!

शकुन्तला के इस कथन में एक विजेता खिलाड़ी का-सा उल्लसित दर्प स्पष्ट लक्षित हो पड़ा। अधर-युग्म के भीतर-ही-भीतर वह मुसकरा रही थी।

कमलनयन का स्वप्न भङ्ग हो गया। उसका अन्तस्तल श्मशान-शिखा की भाँति धू-धू करके जल उठा। उसके जी में आया, वह उठकर कहीं चल दे, पर अशिष्टता के आतंक से वह जी मसोस कर रह गया। अब उसने पत्ते की ओर दृष्टि की, तो प्रतीत हुआ, ट्रंप का तीसरा सर है। पत्ता फेंकते हुए गाव-तकिये पर, एकदम से, सिर के बल लुढ़ककर वह बोल उठा—"आज इस समय पत्ते खेलने में कुछ उत्साह नहीं मिल रहा है।"

चटर्जी महाशय बोले—"ज़रा ठहरिये। इसे समाप्त हो लेने दीजिये।"

नरेंद्र और चटर्जी दोनों अपनी-अपनी चाल चल चुके थे। अब शकुन्तला की बारी थी। पर उसके पास चाल का कोई प्रमुख पत्ता न था। अतएव पत्ता हाथ में लिये हुए वह कुछ सोचने लगी।

इसी समय चटर्जी महाशय बोल उठे—"देवीजी की यही चाल हमारे भविष्य का मार्ग निश्चित् करेगी।"

नरेन्द्र ने चटर्जी के इस वाक्य के श्लेष को ग्रहण करते हुए कहा—"आप लोगों को इतना आतुर होने की आवश्यकता नहीं है। आपका मार्ग ही नहीं, आपका भविष्य भी मैं पहले ही से अपनी मुट्ठी में लिए हुए हूँ।"

इस पर सब लोग हँस पड़े। शकुन्तला बोली—"यह ख़ूब रही।"

इसी समय पत्ता चल दिया गया। यह ईंट का पंजा था, जिसका इक्का नरेन्द्र के ही पास था। कमलनयन ने अपना पत्ता फेंक ही पाया था कि नरेन्द्र ने ईंट का इक्का चलने के बाद कह दिया—"चलिये चटर्जी बाबू। बतलाइये, अब आपका आगे का मार्ग क्या कहता है?"

चटर्जी बाबू बोले—"जो कुछ कहना था, वह तो आपकी मुट्ठी ही कह चुकी है। अब मैं क्या कह सकता हूँ?"

कमलनयन अबतक किसी प्रकार संयत था। अब उसने पत्ते रखकर कहा—"अब तो मेरी तबीयत किसी तरह नहीं लग रही है।"

शकुन्तला मुसकराती हुई कहने लगी—"अगर इस खेल का नेतृत्व इस समय आपके हाथ में रहता, तो शायद तबियत ऐसी न उचटती। क्यों, ठीक कहती हूँ न?"

कमलनयन उठकर बैठ गया। गम्भीरतापूर्वक उसने उत्तर दिया—"ऐसी बात नहीं है देवीजी। बात कुछ और है। क्या बात है, इसे आज बतलाने का अवसर नहीं है। कभी होगा, तो बतलाऊँगा। रह गई नेतृत्व की बात, सो इसमें तो संयोग ही विजय लाता है; क्योंकि यह आख़िरकार खेल ही है। परन्तु जहाँ संयोग की बात न होकर, प्रयत्न की बात होती है, वहाँ भी किसी व्यक्ति के नेतृत्व से मैं कभी आतंकित नहीं हुआ। नरेन्द्र बाबू मेरी इस प्रकृति को जानते हैं। यद्यपि यह मैं मानता हूँ कि जैसे संयोग प्रयत्न से पृथक् रहकर आगे चल नहीं सकता, वैसे ही प्रयत्न भी संयोग का अवलम्ब न पाकर अर्थहीन हो उठता है। इसके सिवा खेल भी

निरा खिलवाड़ नहीं होता । उसमें भी स्पर्द्धा, तर्क और युक्ति का महत्त्व रहता है। वह भी एक प्रकार से, या यों कहो कि दूसरे शब्दों में, युद्ध ही है ।

चटर्जी महाशय ने कहा—"वाह ! क्या बात आपने कह दी !" फिर उन्होंने पान की तश्तरी पर ध्यान दिया। नरेन्द्र, कमलनयन और चटर्जी महाशय ने स्वयं पान ले लिये । शकुन्तला ने पान नहीं खाया। चटर्जी महाशय ने पान खाकर, सिगरेट सुलगाकर, नरेन्द्र बाबू की ओर देखते हुए कहा—"नेक्स्ट मीटिंग का नोटिस मैंने निकाल दिया है।"

नरेन्द्र ने संकेत से इस विषय को यहां और आगे स्पष्ट करने के लिए मना करते हुए कहा—"मास्टर साहब इस समय जान पड़ता है, किसी गम्भीर विवेचन में हैं।"

कमलनयन सचमुच किसी उलझन में था, परन्तु नरेन्द्र के इस स्पर्श ने उसका ध्यान भंग कर दिया । तब मुसकराकर उसने कहा—"आप चुटकी लेना ख़ूब जानते हैं।"

नरेन्द्र बोला—"बात यह है कि लखनऊ में एक चुटकीभंडार पाठशाला है। जब मैं वहाँ था, तो उस संस्था से भी मेरा सम्बन्ध रहा था। ...और हाँ, अच्छी याद आई। आपको वह हिस्टीरिया का जो मर्ज़ हो गया था, उसका क्या हाल है?"

शकुन्तला मुसकराती हुई बोल उठी—"सुना है, इलाज चल रहा है। क्यों?"

चटर्जी महाशय विस्मयाकुल हो उठे । बोले—"इस रहस्यवाद को कविता में ही पनपने दीजिये। गद्य में इसको न भिड़ाइये और ज़रा मुझे भी बतलाइये—ये सब क्या बातें हैं?"

कमलनयन ने हँसते हुए कहा—"ये बे-बात की बातें हैं।"

चटर्जी महाशय अब खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले—"यह मैं और भी नहीं समझा।"

"जान पड़ता है, आपने 'चुभते-चौपदे' नहीं पढ़े।" शकुन्तला बोली।

आश्चर्य-चकित होकर चटर्जी महाशय बोल उठे—"क्या बतलाया आपने ? चुभते…?"

नरेन्द्र ने स्पष्ट करके कहना चाहा कि यह "हरिऔध" जी की हिन्दी काव्य-कला को एक देन है। किन्तु शकुन्तला बोली—"चुभते-चौपदे। चौपदे माने चार पैर वाले जानवर। तात्पर्य्य यह कि ऐसे जानवर जो चुभते हैं वे चुभते-चौपदे हैं।"

चटर्जी महाशय बोले—"वास्तव में मैंने नहीं पढ़े।"

"ओ, तभी।" कहकर शकुन्तला और फिर कमलनयन दोनों हँस पड़े। कमलनयन तो इतना हँसा कि लोट-पोट हो गया।

साढ़े चार बजने का समय हो गया था। चटर्जी महाशय ने घड़ी देखते हुए कहा—"आज खेल तो नहीं जम सका! लेकिन मज़ा आ गया।" तश्तरी से पान उठाकर वे उठ खड़े हुए और सिगरेट सुलगाकर नरेन्द्र की ओर लक्ष्य करके बोले—"चलते हो टेनिस खेलने ?"

नरेन्द्र शकुन्तला की ओर देखने लगा। वह कुछ कहने जा ही रहा था कि शकुन्तला ने कह दिया—"जाना चाहो, तो चले जाओ। मास्टर साहब तो यहाँ अभी हैं ही। मुश्किल यह है कि अगर मैं कोई पुस्तक पढ़ती हूँ, तो सिर में और भी दर्द होने लगता है।"

नरेन्द्र सोचने लगा—"इसको इस दशा में छोड़कर जाना…। फिर उसे कमलनयन का भी ध्यान आ गया। वह यह जानना चाहता था कि वह यहीं बैठेगा, या चला जायगा।"

नरेन्द्र जब चलने लगा; तो उसने एक बार फिर ध्यान से शकुन्तला की ओर देखा।

शकुन्तला बोली—"जाने की तबियत न हो तो न जाओ।"

नरेन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया।

चटर्जी महाशय ने इसी समय कह दिया—"चलते हो, तब तो चलो…।"

अन्य विचारों को, जो तिनके की भाँति उसके मानस पर उतरा रहे

थे, छोड़कर नरेन्द्र बोला—"चलता हूँ।" और कमलनयन की ओर देखकर कहने लगा—"तुम तो बैठोगे न ?"

कमलनयन ने निर्विकार भाव से कहा—"बैठा रहूँगा।"

सत्रह

उस समय वहाँ पाँच मिनट तक कोई किसी से कुछ कह नहीं सका। जब शकुन्तला कमलनयन को देखती, तो वह उसे दूसरी ओर देखता हुआ मिलता और जब कमलनयन शकुन्तला की ओर दृष्टि डालता तो वह दूसरी ओर अपना मुख किये रहती। अन्त में एक बार दोनों की दृष्टि एक हो गई।

उस समय कमलनयन ने देखा—शकुन्तला की आँखें कुछ और कह रही हैं।

तब वह कुछ न कहकर उठ खड़ा हुआ। बोला—"वहाँ सुरेन्द्र के पास बैठता हूँ।"

शकुन्तला दृष्टि नीची किये हुए—"बैठो ज़रा देर, एक काम है।" कहकर पहले भीतर चली गई फिर जल्दी ही वापस आ गई।

कमलनयन बाहर दरवाज़े की ओर देखता हुआ कहने लगा—"मेरे ख़याल में बाहर बैठना ही अधिक उत्तम होगा।"

मदिर जिज्ञासा से शकुन्तला पूछ बैठी—"क्यों ! ज़रा सुनूँ तो सही।"

कमलनयन ने अतिशय गम्भीर मुद्रा में कहा—"क्योंकि मैं तुम्हें जानता हूँ शकुन्तला।"

शकुन्तला चुप रह गई। तुरन्त उससे कुछ कहते न बना। तब कमलनयन ने स्वतः ही कहा—"तुम कहना चाहतीं तो कह सकतीं कि "अच्छा, यह माना कि मुझे पहचान गये हो, पर तुम अपने आपको भी तो कम नहीं पहचानते !" तो, इसपर, मैं यह कहना चाहता हूँ शकुन्तला

कि पहचानता तो मैं अपने आपको यथेष्ट से भी अधिक हूँ। फिर भी मेरे भीतर के इस समस्त अभिमान को जिसने मुट्ठी में रखकर चूर-चूर करके बाहर फेंक दिया है, वह भी मुझे पहचानने लगा है। इसीलिए मैं बाहर जाना चाहता था।"

इसी समय नोटों का एक बंडल कमलनयन के आगे करती हुई शकुन्तला बोल उठी—"इसे लेते जाओ।"

थोड़ी देर के लिए जड़ीभूत-सा होकर कमलनयन बोला—"क्या हो गया है तुमको शकुन!"

दोनों की आँखें भीगने लगीं—दोनों अपने आपको खोने लगे।

कमलनयन के प्रकम्पित ओठ, उसका म्लान-मुख, विशाल ललाट और आँसुओं से तर आँखें देख-देखकर शकुन्तला बोली—"मास्टर साहब! मैं ...मैं तो पागल हो गई हूँ। लेकिन तुम क्यों पागल बनते हो? तुम क्यों रोते हो?"

रूमाल से आँसू पोंछता हुआ, रुद्ध कण्ठ से कमलनयन कहने लगा—"मैं अपने को नहीं रोता हूँ शकुन्तला, मैं तुमको रोता हूँ। फिर भी मैं तुमको केवल एक बात बतलाना चाहता हूँ। अगर तुम इतना सोच सकतीं कि मैं चीज़ क्या हूँ, मैं कर क्या सकता हूँ, और कोई भी क्या कर सकता है, तो शायद तुम पागल न बनतीं!...तुम मुझे ये नोट दे रही हो। इनको सुरक्षित रख छोड़ो। अब इन्हें मैं तुम्हें दे रहा हूँ। ज़रूरत पड़ेगी, तो तुम इन्हें दे सकोगी, इसका मुझे विश्वास है। बात यह है कि कुछ हो, मैं पुरुष हूँ शकुन्तला। इसलिए मैं भूल-भटककर भी ठिकाने लगता हूँ तो संसार की आँखों में किरकिरी नहीं बन पाता। लेकिन तुमने तो आदिशक्ति का रूप पाया है। तुम मनुष्य के जीवन को उत्थित करनेवाली हो! ज़रा अपनी ओर एक बार फिर से देखो तो!...मैं कमलनयन हूँ! बोलो शकुन, मैं नरेन्द्र कैसे हो सकता हूँ?......।"

"लेकिन मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है देवता, वह सब मैं इस समय कह नहीं सकती। मैं जो कुछ बतलाना चाहती हूँ, उसे फिर कभी बत-

लाऊँगी। फिर भी इस समय मैं केवल इतना पूछ लेना चाहती हूँ कि क्या प्रेम सचमुच ऐसा ही ससीम है, जैसा मैं इस समय समझ सकी हूँ।"

"माना कि प्रेम असीम है। तो भी मनुष्य उतना स्वतंत्र कहाँ हो सका है! यह सारा विश्व चल तो एक विधान से ही रहा है न। और उस विधान में अकेला मनुष्य बन नहीं सका। मनुष्येतर समस्त प्राणी अकेले हो सके हैं। सबकी स्थिति का अपनापन पृथक्-पृथक् है। पर मनुष्य के साथ तो उसका संसार भी है। वह चाहे भी तो अपने उस संसार से निस्संग नहीं बन सकता।"

"तो आपका अभिप्राय यह है कि मनुष्य कर्तव्य के बन्धन में आबद्ध है। इसीलिए वह ऐसा स्वतंत्र नहीं हो सकता। पर इस स्वतंत्रता से हमारी आत्मीय निर्मलता का कोई सम्पर्क आपकी दृष्टि में नहीं है।"

"बात यह है कि हमारी वासना रहस्य के गर्भ में लय होकर रहना चाहती है। पर निर्मलता रहस्य की कांक्षा क्यों करे? वह तो उतना ही उज्ज्वल और स्पष्ट होना चाहेगी, जैसा सरिता का उद्‌गम रहता है। निर्झरिणी का नाद है, तो वह मूक क्यों हो। मलयानिल है, तो वह बन्दी होकर क्यों रहे?"

"अच्छा तो यदि वह निरन्तर स्पष्ट होकर रह सके, तो उसपर किसी प्रकार का कलुष प्रतिविम्बित हो नहीं सकता, यही तुम कहना चाहते हो।"

"तुम अभी संशय में पड़ी हो शकुन्तला। पहले इस कल्मष को बाहर फेंक दो, तब जो कुछ कहोगे, वह काम की चीज़ होगी।"

"तो तुम कल्मष को बाहर फेंक देने की चीज़ कह रहे हो। और मैं कहती हूँ कि उस कल्मष की भी एक स्थिति है, उसका भी अपना महत्त्व है। इसके सिवा पहले मुझे एक बार यह भी समझना पड़ेगा कि कल्मष है क्या चीज़? क्या तुम उसे बता सकोगे? कौन आदमी है, जो इससे बच सका हो? और कल्मष से पृथक् हम जो कुछ इस संसार में देखते हैं, कौन कह सकता है कि वह वास्तव में परम पवित्र है? यह तो अपना अपना

दृष्टिकोण है l...देखो, मुसकाकर इस विषय को टालो मत मास्टर साहब। तुम शकुन्तला को तर्क में परास्त कर सकते हो, पर सत्य पर धूल नहीं डाल सकते।"

"अच्छा-अच्छा, इतना जानता हूँ कि तुम बड़ी तार्किक हो रही हो। तो भी मैं तुमसे अब यह आशा रक्खूँगा कि आज की तरह तुम कभी पगली न बनोगी।"

"फिर तुमने वही बात छेड़ दी, जिसको तर्क के आवरण में मैंने सुला दिया था। तुम किस अधिकार से मुझे 'पगली' कह सकते हो, ज़रा सुनूँ तो सही! मैं कहती हूँ—मैं 'पगली' ही सही; पर ज़रा अपने आपसे पूछो। वह कौन है, जो तुमसे ऐसा प्राणपूरक सम्बोधन निकलवाता है। वह कौन है जो मुझको तुम्हारे शब्दों में 'तुम' कहलवाता है? और मैं यह भी जानना चाहती हूँ कि वह कौन है जो अपनी चीज़ मेरे पास रखने की चेष्टा में अपनी रूप-रेखा उज्ज्वल समझने का अधिकार उद्घोषित करता है?"

"अच्छा शकुन्तला, जैसा तुम समझती हो, मैं भी वैसा ही हूँ—बल्कि उससे भी गिरा हुआ। इसके लिए मैं तुमसे...।

शकुन्तला अब विद्युद्धारा की भाँति कमलनयन के आगे बढ़कर उसके मुखपर अपना कर-पल्लव रखकर बोल उठी—"बस, अब आगे बढ़ने की जरूरत नहीं है।"

वह अपने-आप को भूल-सी गयी। उसका रोम-रोम पुलक भाव से जाग उठा। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह सरिता की बीच धारा में जा पड़ी है।

तब एक क्षण तक स्तम्भित रहकर कमलनयन ने शकुन्तला के उस कर को चूम लिया।

अठारह

शकुन्तला के उस गोरे अरविन्द-विनिन्दक कर-पल्लव को चूमकर ही कमलनयन शान्त नहीं हुआ। उसकी लालसा रानी ने उसके आगे एक पग और बढ़ा दिया। वह सोचने लगा—"जीवन एक प्रवाह है और मनुष्य उसमें बह रहा है। कहाँ पेड़ की डाल उसके समान बहते तिनके को रोक लेगी, कहाँ गर्त में पड़कर भँवर में वह नाचता रहेगा और कहाँ जलतरंग उसे कूल पर लाकर छोड़ जायगी, यह सब अनिश्चित है। ऐसे सीमित जीवन, क्षेत्र और काल के योग में मेरा यह गर्व करना कोरा दम्भ है कि मैं घटना और परिस्थिति-जन्य मोहों, प्रलोभनों और आकर्षणों के उद्दाम वेगों से ऊपर हूँ। वह कहाँ है, किस स्थिति में है, कितनी उसकी शक्ति और क्षमता है, कहाँ उसके व्यवहार स्वातन्त्र्य की सीमा; इन सभी बातों से उसकी चेतना जाने कहाँ विलुप्त हो गई। उसके अन्तःकरण का कण-कण दोलायमान हो उठा। उसका रोम-रोम एक अकल्पित भावना से स्पन्दित होने लगा। उसके बाहुद्वय अनपेक्षित गति से स्वतः फैल गये और उसने अपने वक्ष को एक अनङ्गवल्लरी में एकाकार होते हुए पाया।

उस समय यदि जगत् की कोई सूक्ष्म, किन्तु चेतन सत्ता उसके निकट होती, तो उसे बतलाती कि यही वह अंगना है, जिसने कभी उससे कहा था—"ए मास्टर साहब, इधर देखिए, सलाम; ज़रा ठीक से पढ़ाइएगा!" और यही वह कमलनयन है, जिसके मन में उस समय यह कांक्षा उद्दीप्त हो उठी थी कि वह एकदम से उसके मुख पर एक-दो-तीन करते-करते दर्जनों चुम्बन जड़ दे और तब कहे कि "बोलो, अब क्या कहती हो! उस समय मैंने उस बात को सुन नहीं पाया था।" और इसके बाद वह यह भी बतलाए कि उसने झट से यह भी सोच लिया था कि "न तो ऐसा करने की क्षमता ही उसने अर्जित कर ली है और न वह पागल हो गया है।" तदनन्तर वह उससे यह भी पूछे कि उसकी स्थिति में इसी समय कौन ऐसा महदन्तर उपस्थित हो गया है, जिससे वह ऐसा विवेक-हीन हो उठा है!

हृदय में एक हाहाकार छिपाये नरेन्द्र वस्त्र बदलकर धीरे-धीरे शकुन्तला के निकट आ पहुँचा। उसने आते ही स्वयं पूछा--"क्यों, कैसी तबियत है?" अपने किसी व्यवहार से वह पत्नी पर किसी प्रकार का क्षोभ प्रकट नहीं करना चाहता था।

अनुतप्त होकर भी अत्यन्त संयत और स्वाभाविक प्यार से ही शकुन्तला बोली—"तुमने आने में इतनी देर क्यों कर दी? देखो, ज़रा बदन पर हाथ धर के देखो।"

नरेन्द्र बदन छूकर चौंक पड़ा। बोला--"ओह ! आज तो तुम्हें कल से ज्यादा ज्वर है।"

शकुन्तला ने चुप रहकर आँखें बन्द कर लीं। तब नरेन्द्र अपने आप कहने लगा—"मैं लौट तो जल्दी आया था, बल्कि कमरे के पास तक आ गया था। पर तब तक भटनागर आ गया। मैंने सोचा—कमरे में बुला लूँ, परन्तु फिर विचार बदल गया। इसीलिए लौट गया। बाहर सड़क पर टहलते-टहलते उससे बातें करता रहा। उससे जल्दी छूटने की मैंने हरचन्द कोशिश की, बल्कि उससे यह भी कहा कि शकुन की तबियत खराब है लेकिन वह किसी तरह माना ही नहीं।" उसका एक-एक शब्द हार्दिक प्रसन्नता से डूबकर निकल रहा था। बारम्बार वह सोचने लगता— "मेरा सच्चा प्रेम इसके मोह-जन्य अनभ्यस्त कलुष को भी--यदि वह हो—धो डालेगा !"

विस्मय में डूब कर शकुन्तला ने पूछा—"तो तुम यहाँ आकर लौट गये थे।"

नरेन्द्र ने साश्चर्य और सशंक होकर उत्तर दिया--"क्यों, क्या हुआ? इसमें आश्चर्य की क्या बात है?"

पति की आँखों में अपनी आँखें डालती हुई शकुन्तला बोली—"थोड़ी देर पहले मैं मूर्छित हो गई थी। आज कई वर्ष बाद हिस्टीरिया ने फिर आक्रमण किया।

स्वाभाविक विस्मय के साथ नरेन्द्र बोल उठा--"अच्छा, तुमको

आज मूर्छा फिर आगयी !" बस, इसके बाद वह थोड़ी देर मौन हो गया। फिर एक निश्वास के साथ उठता हुआ नरेन्द्र बोला—"अच्छा तो डॉक्टर साहब को बुलवाए लेता हूँ। तुम चुपचाप लेटी रहो। कहो, एक कम्बल और ऊपर छोड़ दूँ। लेकिन भारी तो न होगा ?"

शकुन्तला बोली—"रहने दो। इतना ही काफ़ी है।"

नरेन्द्र चला गया। चलते हुए वह कहता गया—"मैं अभी तुरंत आया।"

शकुन्तला एक शीतल निःश्वास छोड़ती हुई मन ही मन भगवान का स्मरण करती हुई कहने लगी—"ओह ! मैं नहीं जानती थी कि तुम सचमुच ऐसे पतितपावन हो !"

संकट के समय लोगों को भगवान ख़ूब याद आता है।

वह उठी, और उसने ग्रामोफ़ोन बजाना प्रारम्भ कर दिया। कोमल मृदुल स्वरों में गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में उसने सुना—"रघुबर तुमको मेरी लाज !"

ग्रामोफोन बज रहा था और गोस्वामीजी की अमरवाणी का अमृत शकुन्तला को पवित्र शान्ति-दान में संलग्न था। आगे आया—"सदा सदा मैं सरन तिहारी, तुम बड़े गरीबनिवाज !"

शकुन्तला मन-ही-मन सोच रही थी—"आह ! कितना मीठा रस है तुम्हारी अनुभूति में।"

इसी समय नरेन्द्र आ गया और शकुन्तला ग्रामोफ़ोन बन्द करने लगी, तो उसे रोकता हुआ नरेन्द्र बोला—"क्यों, बन्द क्यों कर दिया ? इस रिकार्ड को मैं भी बहुत पसन्द करता हूँ।...तुम लेटो, आज मैं बजाता हूँ।...डॉक्टर मिला नहीं। कहीं बाहर गया है।"

किन्तु जब वह रिकार्ड पूरा हो लिया; तो शकुन्तला बोली—"बन्द कर दो।" पर क्षणभर रुककर फिर आपही बोली—"हाँ, अब बतलाओ, भटनागर से क्या बातचीत हुई।" वह अपनी अस्वस्थता के इस प्रसंग को

किसी प्रकार यहीं समाप्त कर देना चाहती थी।

शकुन्तला के स्वाभाविक ढंग और आत्मीय व्यवहार से नरेन्द्र को बारम्बार यही अनुभव हो रहा था कि शकुन्तला निष्कलंक है। जो कुछ भी उसने सुना है, वह केवल क्षणिक प्रमाद है। वह स्थायी नहीं है। मेरी शकुन ऐसी नहीं हो सकती।

वह कहने लगा—"अपनी उस दिन की बहस के लिए वह बहुत शर्मिन्दा था। कहता था—मेरा यह मतलब कदापि नहीं था कि हेडमास्टर साहब के मन्तव्य में मैं विघ्न डालूँ। मैं सब प्रकार से आप लोगों के साथ हूँ। परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि जो कुछ किया जाय, ऐसे ढंग से किया जाय कि किसी को भी अंगुली उठाने का अवसर न मिले। आप जानते हैं, यदि आलोचना का डर न हो, तो योग्य-से-योग्य और विचारवान व्यक्ति भी ऐसी-ऐसी भद्दी भूलें कर बैठें कि आगे पैर रखना भी उनके लिए कठिन हो जाय।"

शकुन्तला बोली—"आदमी सुलझा हुआ जान पड़ता है।"

नरेन्द्र बोला—"मैंने भी उसको इस बात के उत्तर में कह दिया—"इस विषय में मेरा भी यही मत है।"

शकुन्तला करवँट बदलती हुई बोली—"मैं अब उसको दोषी नहीं समझती।"

तब प्रबोध प्रसन्न मुख से नरेन्द्र ने भी इसके पश्चात् कहा—"पर कितनी विचित्र बात है शकुन, कि इसी भटनागर को मैं उस दिन गाली दे बैठा था! सचमुच, हम मनुष्य को पहचानने में कभी-कभी कैसी भूल कर बैठते हैं!"

अवसर अनुकूल देखकर शकुन्तला निर्विकार भाव से कह उठी—"मनुष्य-जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।"

नरेन्द्र इसी क्षण शकुन्तला के अम्लान मुख की ओर टकटकी देखकर बोला—"तुम ठीक कहती हो शकुन! पर प्रत्येक घटना अपना

एक आधार रखती है। क्योंकि कोई ग़लती निराधार नहीं होती और किसी भी ग़लती के समर्थन के लिए कारणों और आधारों की संसार में कमी नहीं।"

शकुन्तला तब चुप रह गयी। उसके पलक झप गये। नरेन्द्र बारम्बार उसकी मुद्रा की ओर दृष्टि स्थिर किये हुए बैठा रहा। अन्त में शकुन्तला ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—"सच-सच बतलाओ, क्या तुमने मेरे व्यवहार में कहीं कई ग़लती पाई है?"

नरेन्द्र उठकर खड़ा हो गया। अत्यन्त संयत वाणी में वह बोल उठा—"मैं कुछ नहीं जानता शकुन। मैं नहीं कह सकता, क्या सत्य है और क्या मिथ्या। इसका निर्णय तो तुम स्वयं कर सकती हो। मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि सबसे अधिक उच्च व्यक्ति वह है जो जीवनान्त के क्षण तक सचाई के साथ यह कह सके कि मैंने कभी किसी को धोखा नहीं दिया, मैंने कभी सत्य पर धूल नहीं डाली।"

शकुन्तला अवाक् थी और नरेन्द्र कमरे के बाहर जा रहा था।

बीस

कमलनयन अपने आपको अपराधों की सहस्र धाराओं के बीच डूबता हुआ देख रहा है। भीतर कुछ और रक्खे, और ऊपर से कुछ और प्रकट करे, उससे ऐसा कभी नहीं हो सका। इस विश्व में जो कुछ भी है, कमलनयन उसको उसी दृष्टि से देखने का अभ्यासी है। कोई उसके कथन और कर्म से चाहे अप्रसन्न भले ही हो जाय, पर उसने अपने आपको यथार्थ स्थिति में ही रक्खा है। वह जानता है कि जो दूसरों के साथ प्रवञ्चना करता है वह अपने साथ भी कर सकता है। इस प्रकार किसी से भी छल करना वह सदा हेय समझता आया है।

जब वह शकुन्तला के कमरे से चलने लगा, तो उसके मन में एक

बात आई। वह सोचने लगा—"आज मैं इस शकुन्तला के यहाँ से हार-कर जा रहा हूँ। जिसने कभी किसी क्षेत्र में पराजय न पाई हो, वही व्यक्ति जीवन के इस साधारण से खेल में इस तरह मात खा जाय, उसके लिए यह कैसा दुस्संयोग है! किन्तु एक मैं ही क्या निरा अपराधी हूँ, क्या शकुन्तला कहीं भी नहीं गिरी? पर इसकी समीक्षा हो कैसे सकती है! इस नारी को जब कभी भी उसने एक दृष्टि डालकर देखा है, अपने भीतर, सदा ही एक पिपासा को उद्वेलित होते हुए पाया है। दूसरी ओर वह शकुन्तला भी उसके प्रति सदा समर्पित-सी, उद्यत-सी, मंत्रमुग्ध अभिभूत-सी रही है। परिचय होने के क्षण से लेकर अब तक उसने उसे कितना उपकृत किया है! उसका हृदय कितना कोमल है, कितना उच्च! जैसे वह मेरे जीवन की रागिणी हो! पवित्र ऐसी, जैसे मंदाकिनी! उस समय जब मैं कहने लगा—"अच्छा, जैसा तुम समझती हो, मैं वैसा ही हूँ। बल्कि उससे भी गिरा हुआ। इसके लिये मैं तुमसे क्षमा...।—तो उसने मेरे मुँह पर हाथ रखकर कहा था—"बस, अब आगे बढ़ने की ज़रूरत नहीं है।" इस प्रकार उसने मुझे क्षमा माँगने से मना किया था। तब उसके इस मृदुल स्पर्श अथवा अभीप्सित संकेत में ही कौन-सा विपय-प्रस्थान था!...फिर उस घटना के बाद उसे उस दुर्निवार संयोग पर कितना दुःख हुआ! वह मूर्छित हो गई! और वह सचेत भी हुई, तो उसकी आँखों में आँसू छलक आये! फिर पहले ही क्षण उसने बतलाया—"वही थे!"

बारम्बार यही सब सोचता हुआ वह घर आया। अपने प्रति दुर्धर घृणा से उसका मुख तो म्लान था ही, शरीर भी जैसे जीवन हीन हो गया था। किसी तरह साइकिल पर वह चला तो आया, पर उसे स्पष्ट अनुभव हो रहा था, जैसे उसके पैरों में शक्ति ही नहीं रह गई है। बारम्बार उसके कानों में नरेन्द्र के ये शब्द गूँज उठते थे—"तुम तो बैठोगे [illegible]" [illegible] —"यह कमलनयन निरा कीड़ा निकला, एकदम [illegible]! ओः उसने मुझ पर कितना विश्वास किया

था ! और अन्त में मैं कितना विश्वासघातक निकला !" फिर वह अपने लिए सोचने लगा—"सचमुच उसने मेरे साथ कैसी आत्मीयता का निर्वाह किया और उसी के लिए मैं कैसा कुटिल, लम्पट और अविश्वासी सिद्ध हुआ।"

कमरे में साइकिल रखकर वह उस समय अपनी बैठक में ही आकर बैठ गया। यों वहाँ वह बहुत कम बैठता रहा है। कोई बाहरी मित्र आ गया, या किसी मुवक्किल से ही कुछ कहना हुआ, तो वह भले ही यहाँ घड़ी-दो-घड़ी बैठा हो, अन्यथा कुछ पढ़ने या आराम करने की इच्छा से इस बैठक में वह कभी नहीं बैठा। पर इस समय तो उसकी स्थिति उस चोर की-सी थी, जो अभी-अभी सेंध काटकर भाग खड़ा हुआ हो। सशंकित भाव से वह कुरसी पर बैठा हुआ सोचने लगा—"आज रविवार का दिन ठहरा। भैया ऊपर होंगे। अगर उन्होंने पूछ दिया—"आज इस समय क्या कहीं जाने का प्रोग्राम नहीं था ? वैसे तो इस समय तुम घर पर कभी नज़र आते न थे।"—तो क्या उत्तर दूँगा ? भैया चाहे न भी पूछें, परन्तु भाभी तो चुटकी लिये बिना मानेंगी नहीं ! तब उनसे क्या कहूँगा ? क्या झूठ बोलूँगा ? एक सत्य सौ बलाएँ टालता है और एक असत्य की रक्षा करने में सौ असत्य और रचने पड़ते हैं ! फिर असत्य बोलनेवाले का आत्मा कितना दुर्बल, कैसा हीन हो उठता है ! न, कमलनयन झूठ न बोलेगा ! वह कह देगा…"हाँ, इस समय मेरा कहीं जाने का कोई प्रोग्राम नहीं है। कोई काम हो, तो बतलाइये।"

इस प्रकार कमलनयन ने अपने को सब प्रकार से निश्चिन्त बना लिया। इस तरह उसका बहुत कुछ बोझ हलका हो गया। अब उसके म्लान मुख पर शान्ति और संतोष की आभा प्रकृत रूप से झलमलाने लगी।

इसी क्षण ऊपर जाने की सीढ़ी पर धमक के धक्के बड़े ज़ोर से आने लगे। कमलनयन को यह समझते देर न लगी कि ये चुन्नू और मुन्नू ही हैं। और सचमुच तुरन्त दोनों बारी-बारी से आकर उसके सामने खड़े हो गये। चुन्नू बोला—"चच्चा, तुमको बाबू ने बुलाया है।" मुन्नू बोला—"और अम्मा ने भी बुलाया है।" चुन्नू कहने लगा—"लेकिन पहले

बाबू ने ही बुलाया था।" इस पर मुन्नू बोला--"पर उनमें आपस में जो बातें हुई थीं, तुम सुन तो नहीं पाये। पहले अम्मा ने ही तो बतलाया था कि जान पड़ता है, भैया नीचे आ गये। बैठक के किवाड़, खुलने की आहट हुई थी। देखो, होंगे ज़रूर। कहना, तुमको बुलाया है। उन्हीं के कहने से बाबू ने भी कह दिया—हाँ, उसे बुला लाओ। जान पड़ता है, नीचे ही बैठा है। मुमकिन है, किसी से बातें कर रहा हो। कहना, कुछ ज़रूरी काम है।"

कमलनयन ने कहा--"चलो, हम आये।"

चुन्नू ऊपर चला गया। मुन्नू नीचे रह गया। कमलनयन ने ऊपर जाकर पहले अपने कमरे में कपड़े बदले, फिर भैया के निकट खड़े होकर कहा--"कुछ काम है क्या?"

कमला बाबू बोले—"हाँ, तुमसे कुछ कहना है।"

यमुना पीढ़े पर बैठी हुई थी। जलती हुई अँगीठी उसके सामने थी। वह पराठे बना चुकी थी और इस समय साग छौंक रही थी। पास ही एक चटाई पर दीवाल के सहारे उठँककर कमलाबाबू बैठे हुए थे। कमलनयन को खड़े-ही-खड़े बात सुनने के लिए तत्पर देखकर उन्होंने कहा—"बैठो, तुमको कोई जल्दी तो नहीं है। नीचे कोई और तो तुम्हारे इन्तिज़ार में बैठा नहीं है न?"

कमलनयन ने कहा—"नहीं।"

अब कमलाबाबू ने कहा--"हाँ, तो इतमीनान के साथ बैठ जाओ। बात यह है कि अब इस तरह कितने दिन तक रहोगे? तुम्हारी यह भाभी बराबर कई साल से मुझसे कहती आ रही है, और मैं भी सोचता हूँ, विवाह की तुम्हारी यही उमर है। कोई कह बैठता है कि कमल का विवाह अभी तक नहीं हुआ, तो मुझे बड़ी शरम मालूम होती है। तुम तो बहुत छोटे थे, तुमको क्या स्मरण कि मेरा विवाह कब हुआ। उस वक्त मेरी उमर पंद्रह वर्ष की भी नहीं थी। पर अब नया ज़माना है, नयी बातें हैं। नहीं तो पहले लोग इसी उमर में ब्याह कर डालना

ज्यादा पसन्द करते थे। खैर, तो बस, यही बात तुमसे कहने को थी।

"वैसे तुम्हारे विवाह के लिये अब तक कई व्यक्ति आये, पर इस समय एक महाशय मेरे पीछे पड़ गये हैं। उनकी तो गरज़ है ही, लेकिन मेरा मन देखकर ही वह भी इसी सम्बन्ध पर तुल गये हैं। वे भले आदमी हैं। उनके तुम्हारी ही उमर का एक लड़का है, उसी की छोटी बहन है। उमर उसकी सोलह-सत्रह वर्ष की है। पढ़ी-लिखी भी है। दहेज में भी उन्होंने बारह-सौ नक़द देने का वादा किया है। क़रीब-क़रीब इतना ही हमारा ख़र्च भी हो जायगा। इस तरह ले-देकर घाटे में नहीं रहेंगे। लड़की बड़ी सुशील है; सीना-पिरोना और खाना-पकाना आदि घर-गृहस्थी के कामों में भी निपुण है। और अधिक हमको चाहिए ही क्या? रही बात रूप-रंग की। सो तुम देखना चाहो, तो देख भी आ सकते हो। फ़ोटो देखने से संतोष हो जाय, तो फ़ोटो भी आ सकता है। उन लोगों को इसमें कोई एतराज़ नहीं है।"

कमलनयन के मन की स्थिति इस समय कैसी है, कमलाबाबू को उसका क्या पता हो सकता है! अभी एक घंटा भी नहीं हुआ, कमलनयन अपने प्रति ही अविश्वसनीय हो चुका है। थोड़ी रस-लिप्सा में आकर अभी-अभी अपना सारा व्यक्तित्व वह खो चुका है। घृणा-की-घृणा से वह भीतर-ही-भीतर अवसन्न है। विवेक और दूरदर्शिता का उसका सारा दर्प अभी मिट्टी में मिल चुका है। वह अब आगे कैसे चलेगा? नरेन्द्र जो उसका आत्मीय मित्र है, जब उसके साथ बातचीत करने को उद्यत होगा, तब किस दृष्टि से वह उसकी ओर देखेगा? उसकी बात ठीक तरह से वह सुन भी सकेगा कि नहीं; वह नहीं कह सकता।

और शकुन्तला! ओह! क्या अब फिर वह उससे मिलेगा? क्या फिर भी वह शकुन्तला के सामने जायगा? उसको देखकर वह अपने मन में क्या कहेगा? कहेगी कि आ गये कविजी! इन्हीं के सम्बन्ध में उस दिन उन्होंने (नरेन्द्र ने) कहा था कि हिन्दी-साहित्य इनकी कृतियों से कम गौरवान्वित नहीं हुआ। साहित्य को गौरव देनेवाले व्यक्ति

अपना निज का कितना गौरव रखते हैं। देख लिया, उनमें कितनी विवेक-बुद्धि है, कैसा आचार-धर्म !

कमलनयन के मन में इन्हीं विचारों की आँधियाँ आ रही हैं। चटाई पर बड़े भैया के पास, कुछ फ़ासले पर वह चुपचाप बैठा हुआ है। उसकी दृष्टि कमलाबाबू के मुख पर जमी हुई है। वे जो कुछ अभी उससे कह गये हैं, उन बातों में एक-आध बात उसने सुनी भी है। उसके विषय का थोड़ा-सा परिचय भी उसे हो गया है। फिर भी कौन बात कहाँ तक पहुँच गई है, इस विषय में वह अभी तक अबोध ही है। उधर कमला बाबू अपनी बात समाप्त कर चुके हैं। उनका अभिप्राय यह है कि इस विषय में कमलनयन का अगर कुछ वक्तव्य हो, तो वे उसे इस समय जान लेना चाहते हैं क्योंकि वे बराबर सुनते आ रहे हैं कि कमलनयन को अब भी अपना विवाह करना स्वीकार नहीं है।

कमलाबाबू ने जब देखा कि कमलनयन सत्य-कृष्ण कुछ भी नहीं कह रहा है। 'हाँ' या 'ना' उसके मुख से कुछ भी नहीं निकल रहा है, तब उन्हें थोड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कहा—"क्यों, मेरी बात क्या तुमने सुनी नहीं ?"

कमलनयन ने उत्तर दिया "सुनी है।"

तब कमलाबाबू बोले—"उसके सम्बन्ध में तुमको कुछ कहना तो नहीं है ?"

कमलनयन क्या कहना चाहता है, यह बतलाने का कभी अवसर था और तब वह उसे बतला भी सकता था। पर वह अवसर आज उसके आगे से खो गया है। वह कैसे कहे और क्या कहे ! एक बार उसके जी में आया, वह कह दे—'अभी मुझे ब्याह नहीं करना है।' दूसरी बार उसने सोचा, उसे स्पष्ट रूप से कह देना है—"ऐसे समय में, जब कि मेरी आय का कोई निश्चित प्रबन्ध नहीं हुआ, आप जो ऐसा प्रस्ताव कर रहे हैं, मेरे लिए यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।" तीसरी बार उसने तै किया—सीधी सी बात है। वह कह देगा—"मैं

कुछ नहीं जानता। जो आपके जी में आये, कीजिये।" किन्तु सारे कथन उसके मानस पर ही तैरते रहे। उसकी जिह्वा जैसे तालू से चिपक-सी गई।

कमलाकान्त क्या कमलनयन को जानता नहीं है? कभी आध घंटे के लिए भी दोनों ने साथ बैठकर वार्तालाप नहीं किया। जब कभी अवसर आया है, घर-गृहस्थी की सारी बातें यह कमलनयन यमुना से ही सुनता आया है। या कभी उसे ही कुछ बतलाना हुआ तो उसीने यमुना से कह दिया है। इस विषय में कभी कोई व्यतिरेक उपस्थित नहीं हुआ। पर कमलनयन ने अब तक कभी ऐसा अवसर नहीं आने दिया कि वह अपनी ओर से कमलाबाबू से देर तक बातें करता। हाँ, जब कभी कमलाबाबू ने ही कोई बात पूछी, या कोई काम उसके सिपुर्द कर दिया, तो उसने सबसे पहले उसे पूरा करके उन्हें या तो उसकी सूचना दे दी, या उस कार्य की पूर्ति ने ही उनको सभी कुछ बतला दिया। इसलिए कमलाकान्त इस समय, इस विषय में, कमलनयन को जो मूक ही पा रहे हैं, इसमें भी कहीं कोई द्विविधा या रान्ध्र नहीं है।

इस कमलनयन को कमलाकान्त जितना समझ सके हैं, उससे भी अधिक उसे समझनेवाली इस घर में यमुना है। वह जानती है कि कमलनयन अपने बड़े भैया को कितना मानता आया है। लेकिन मानने या आदर करने की बात तो अन्य स्थलों या सम्बन्धों में भी मिलेगी। पर भाई के प्रति अपने सर्वस्व-समर्पण की ऐसी उदात्त भावना उसने कहीं देखी नहीं और सुनी भी नहीं है। और आज जब उसका वही भाई, उसीके सम्बन्ध में, इस प्रकार की बातें करने बैठा है, तब कमलनयन बेचारा क्या कह सकता है। यमुना जैसे इसी विमर्श में अबतक डूबी हुई थी। किन्तु जब कमलाबाबू ने पूछ दिया—"इन बातों के सम्बन्ध में तुमको कुछ कहना तो नहीं है?" और तब भी कमलनयन चुप ही बना रहा, तो उस दशा में यमुना के लिए चुप रहना कठिन हो गया। उसने एक बार कमलनयन के मुँह की ओर देखा। देखा, वह कुछ गम्भीर है, जैसे

—"लेकिन मान लिया कि नरेन्द्र समझ लेगा, देर हो जाने के कारण ही कमलनयन वहाँ अधिक ठहर नहीं सका है। तो भी यह एक छोटी-सी बात थी। यदि वह यही बात सुरेन्द्र से कहकर जाता, तो इसमें कितनी उसकी ख़ूबसूरती थी, कितनी रक्षा ! पर इन छोटी-छोटी बातों में रक्खा क्या है ? नरेन्द्र को तो हमें आज समझाना नहीं है। वह क्या कुछ जानता नहीं है ? तब तो उसको भुलावा देने की ही यह एक मिथ्या चेष्टा होती। मैं चला ही आया, तो क्या इसका यथार्थ मर्म उस से छिपा रहेगा ? क्या वह समझ न सकेगा कि उस समय तुरन्त वहाँ से मेरा चला आना कितना स्वाभाविक था ?

"परन्तु इस शकुन्तला को हो क्या गया है ? नरेन्द्र उसे प्राणों के ठार रखता है। उसने जैसे अपने आपको, उस शकुन्तला के प्रति, समर्पित कर रक्खा है। वह उसमें समा गया है। उससे पृथक् वह मानो अपना कोई अस्तित्व ही नहीं मानता। उसे वह अपनी आत्मा के रूप में देखता है। वह आदर्श पति है। नहीं, वह पति नहीं है। वह तो पत्नी का उपासक है, भक्त। उसके विरोध में वह कभी कुछ विश्वास नहीं कर सकता, संशय की तो बात ही और है। फिर भी वह विचारक है, न्याय उसका बल है। वह दूसरे को अपराधी समझने की अपेक्षा पहले अपने आपको तोल लेता है। वह किसी के साथ अन्याय कैसे करेगा, जब कि वह अपने आपको ही न्याय के कठोर बन्धनों से जकड़कर रखता आया है। वह शकुन्तला पर कभी अविश्वास कर नहीं सकता।

"और शकुन्तला ! ओह ! मैं खुद ही जैसे उसे नहीं समझ रहा था। क्या वह मुझे चाहती है ? क्या उसके हृदय में मेरे लिए कोई एकान्त स्थल बन गया है ! क्या उसकी आत्मा में मेरे लिए कहीं कुछ उत्सर्ग है ? छिः यह तो विकार-ग्रस्त पुरुष-हृदय की अपनी पिपासा है, जो वह समझने लगता है कि अमुक नारी मुझसे प्रेम से बातें करती है, हँस के बोलती है, दुःख-सुख की सभी समस्याएँ मेरे सामने रखती है, मुझसे कुछ छिपाती नहीं—और इसलिए वह मुझे चाहती है।

"और यह चाह क्या वस्तु है ? कोई किसी को चाहता हो, तो इसमें कलुष कहाँ है ? प्रेम के साथ वार्तालाप, स्वागत-सत्कार, पास बैठना-उठना; पुरुषों में, समाज में, कहीं भी वर्जित नहीं है। यह सब तो आज शिष्टाचार या मित्रता के चिह्न हैं। किन्तु यदि व्यवहार में कोई नारी ऐसी ही मित्रता, ऐसा ही सौजन्य किसी पुरुष से प्रकट करती है, तो हम उसे मित्रता न समझकर कुछ और समझने लगते हैं ! समझते हैं, यह उसकी चाह है, प्यास है, प्रेम है, वासना है—पाप है।

"यहाँ संस्कृति की बात सामने आती है। भारतीय संस्कृति कहती है—नारी के लिए पर-पुरुष एक अपदार्थ है। वह उसके लिए अस्तित्व-हीन है, वह कुछ भी नहीं है। किन्तु यह बात उस युग की है, जब नारी अपने गृह और कुटुम्ब तक ही सीमित थी। किन्तु अब तो नारी वैसी सीमित नहीं है। तब नारी व्यक्ति से युक्त थी, अब वह समाज का अंग हो रही है। तब नारी व्यक्ति की सम्पत्ति थी। व्यक्ति को अधिकार था कि वह जब तक चाहे, उसका संचय करे, उसको संचित रक्खे और जब चाहे तब उसे ख़र्च कर डाले, उसे निकाल दे—हृदय से या घर से। किन्तु आज की नारी व्यक्ति की वैसी निजी सम्पत्ति बनकर कैसे रह सकती है ! अब तो उस नारी ने अपने ही को न देखकर विश्व-भर को देखना चाहा है। अब वह संसार को देखती हुई अपने को देखती है। अब वह मताधिकारिणी बन रही है। अब उसके पद-कमल विश्व-सरोवर में फैल रहे हैं। अब पर-पुरुष की छाया से भागना, उसे अपदार्थ मानकर उसकी ओर दृष्टि तक न डालना, उसके लिए कैसे सम्भव हो सकता है ! अब तो समाज में आत्मसात् होकर उसे रहना है। अब परपुरुष से दूर रहना तो दूर की बात है, उसे उससे मिलना पड़ेगा, उनमें लिप्त होना पड़ेगा और जीवन-संघर्ष में उनसे भिड़ना भी पड़ेगा। यहाँ तक कि आवश्यकतानुसार उन्हें मित्र या शत्रु भी बनाना पड़ेगा।

"तो शकुन्तला का उसके प्रति यह आदर या श्रद्धा का जो भाव है, वह यदि मित्रता का ही है, तो इसमें कलुष कहाँ है !

बाइस

शकुन्तला यों देखने में स्वस्थ रहती है। खाना भी वह जैसे-तैसे खा ही लेती है। परन्तु न तो उसकी खाँसी ही जाती है, न वह पूर्ववत् प्रफुल्ल रहती है। कभी-कभी उसे मूर्छा भी आ जाती है। हाँ, नरेन्द्र के देखने-भर को वह अवश्य प्रसन्न रहती है। उससे हँसकर, मुसकराकर, उसी प्रकार बातें करती है, जिस प्रकार पहले किया करती थी। अपनी ओर से अपने आचार-व्यवहार में कोई भी अन्तर वह नहीं उपस्थित होने देती। किन्तु पूर्ण प्रयत्नशील रहने पर भी कभी-कभी वह उन्मत्त हो ही जाती है। कभी-कभी उसे हलका-सा ज्वर भी हो आता है।

नरेन्द्र पहले शकुन्तला के साथ जो समय दिया करता था, अब उसमें थोड़ी वृद्धि हो गई है। पहले शाम को टेनिस खेलकर लौटने के पश्चात् भोजनादि से निवृत्त होकर वह थोड़ी देर ही शकुन्तला से वार्तालाप करता था। समय निकालकर नौ बजे तक वह कुछ पढ़ा करता था। अब उसे अपने पढ़ने का वह समय भी शकुन्तला के साथ वार्तालाप में देना पड़ता है।

उस दिन नरेन्द्र क्षणभर के लिए, शकुन्तला और कमलनयन दोनों के प्रति उग्र हो गया था। पर अब उसने मान लिया है कि "उसका वह आक्षेप उतना यथार्थ नहीं है, जितना उस क्षण वह समझ बैठा था। शकुन्तला अब भी उसी की बनी है। हाँ, यह हो सकता है कि उसके भीतर कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी, कमल आकर बैठ जाता हो। पर इसके लिए चारा क्या है! यह तो मन की एक गति है। इसके लिए कोई क्या करेगा! न, इसके लिए मैं उसे दोषी नहीं ठहरा सकता। हम सब कर्तव्य के बन्धन में आबद्ध हैं। हम अपने भीतर कहाँ क्या रखते हैं, कौन जानता है और कौन कह सकता है! अगर हम अपने कर्तव्य से पराङ्मुख नहीं होते, किसी के साथ प्रवञ्चना नहीं करते, मुख पर नहीं लीपते और स्याह को सफ़ेद नहीं बनाते, तो हम अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। परन्तु उस दशा में भी यदि हम भीतर एक रन्ध्र रखते ही हैं, एक अग्नि हमारे भीतर सुलगती ही रहती है और कर्तव्यवश हम उसे दबाये रखते हैं, उसका

मुँह बन्द करके उसे निरन्तर निर्जीव-सा ही बनाये रखते हैं, तो यह भी तो एक साधना है, तपस्या है, संयम और त्याग है। इस प्रकार शकुन्तला यदि कमलनयन को भीतर से प्यार भी करती रहे; परन्तु हमारे सम्बन्धों को, हमारे अधिकार को, कभी क्षीण न होने दे, कभी उसमें कोई किन्तु न झलकने दे, तो वह शकुन्तला धन्य है, पूजनीय है।

इन दिनों नरेन्द्र अपनी शकुन्तला को इसी रूप में देख रहा है। उस दिन की घटना का मर्म उससे छिप नहीं सका। अनेक अचेतनकारी वाक्य उसने अपने कानों से सुने, क्षण-भर के लिए वह भावावेश में भी आ गया, तो भी आगे चलकर उसने अपने आपको सम्हाल ही लिया। और आज तक वह अपने आपको सम्हाले ही हुए है। आजतक उसने कभी कोई ऐसी बात शकुन्तला से नहीं कही, जिससे उस दिन की घटना के प्रति उसे इस बात की आशंका होती कि वह सब कुछ जानता है।

इसका कारण है। नरेन्द्र मानता है कि शकुन्तला अभी तक उसी की बनी है। तब उस बात के प्रकट हो जाने पर उस शकुन्तला के हृदय को कितनी ठेस लगेगी! आज तो वह समझती है कि मैं उसी का हूँ। मेरे लिए संसार में एक वही है। किन्तु तब तो ऐसी बात न रह सकेगी। वह समझने लगेगी कि उनकी दृष्टि में मैं खो चुकी। क्योंकि उन्होंने जान लिया है कि वह अपने हृदय-प्रदेश में किसी और देवता की प्रतिष्ठा करने लगी है। और उस दशा में वह सदा संशयग्रस्त रहेगी। सदा वह यही समझा करेगी कि जब मैंने अपना विश्वास उनकी दृष्टि में खो दिया, तब मेरी इस आत्मा का, मेरे इस शरीर का, उनकी दृष्टि में क्या मूल्य रह गया होगा! घृणा-की-घृणा से उसका मन भर जायगा। जीवित रहती हुई भी वह मृत-वत् रहेगी! इधर यों भी वह अस्वस्थ रहती ही है। और तब तो उसका जीवन ही दुर्लभ हो जायगा।

इसीलिये नरेन्द्र इस आघात को सह रहा है, इसीलिए वह इस कलंक को काट रहा है। उसकी दृष्टि केवल शकुन्तला पर है। वह चाहता है, शकुन्तला उसकी बनी रहे; फिर और चाहे जो कुछ हो। अन्य बातों

पर ध्यान देने का उसे समय कहाँ है ? अन्य बातें वह सोचना नहीं चाहता, सुनना नहीं चाहता। निरन्तर उसकी दृष्टि शकुन्तला के मनोभावों के अध्ययन पर लगी रहती है। वह अपनी सुधिभर उसी को देखा करता है। वह मानता है कि उसके मन-प्राण और काया की उपासना, उसकी साधना, उसके जीवन की हर एक साँस यही शकुन्तला है। सोते-सोते वह चीख़ उठता है—"शकुन ! शकुन ! तुम्हारी तबियत तो अच्छी है न ?...क्या कहा ? डाक्टर। हाँ, डाक्टर को अभी ले आता हूँ।"...कोर्ट में मुक़दमे की मिसिल देखते-देखते और फैसला लिखते-लिखते वह शकुन्तला शब्द की अक्षरावली लिख बैठने के भ्रम में पड़ जाता है। कभी-कभी अपने मन की इस चिन्त्य स्थिति से, अपने इस आत्म-मंथन और अन्तर्द्वन्द से, वह इतना आतंकित हो उठता है कि अपने आपही सोचने लगता है—"मुझे हो क्या गया है !"

इतना सब होते हुए भी क्या नरेन्द्र अपनी इस स्थिति से सन्तुष्ट है ? कभी-कभी उसके मन में आता है—"उसके स्वप्नों का राज्य, उसके अरमानों की दुनियाँ, उसके हृदय का ख़ज़ाना लुट गया है। शकुन्तला के मन को जब एक बटोही ने चुरा ही लिया है, तब उसके साथ उसका उलझा रहना व्यर्थ है। जिस शकुन्तला को वह जीवन के पल-पल के साथ मिश्रित देखता आया है, वह जब अपने मनोमंदिर में किसी अन्य मूर्ति की प्रतिष्ठा किये बैठी है, तो शकुन्तला उसके लिए है कहाँ ? वह अपने साथ छल कर रहा है। उसे धोके में रख रहा है। साफ़-साफ़ वह यह क्यों नहीं स्वीकार कर लेता कि शकुन्तला को वह भले ही अपने भीतर बिठाये रक्खे, पर वह अब उसमें बैठ नहीं पा रही है। उसने अपना घरौंदा अन्यत्र बना लिया है। वह चिड़िया है और उड़ना जान गई है।

कभी वह सोचता है—"अच्छा, मान लो कि शकुन्तला उसकी कोई नहीं है; तो फिर वही उसका क्यों बना रहे ! उसके पथ का कंटक, उसके प्याले का गरल, उसके आशा-स्वप्नों का विच्छेद बनकर वह क्यों रहे !

क्यों न वह इस माया के पाश को, इस रहस्य के मर्म को, इस अन्धकार पर पड़े हुए परदे को, इस अपरूप अभिनय को खोलकर जगत के सामने रख दे ? इसमें उसका क्या जायगा ! वह भावावेश में आकर कभी-कभी अपने आप ही उबल उठता है—"मैं सत्य को ढका हुआ क्यों रहने दूँ ! यह तिमिराच्छन्न सत्य है किस मूल्य का ! इसे दुनियाँ को साफ़-साफ़ क्यों न देखने दूँ ! संसार के समक्ष स्पष्ट रूप से क्यों न यह प्रकट हो जाने दूँ कि यह नारी प्रवञ्चना, छल और माया की ही एक अप्रतिम सृष्टि है। कोई इसके भुलावे न आवे, कोई इसका विश्वास न करे। यह मृग-तृष्णा है, अन्धेर-नगरी। यहाँ हृदय-दान का कोई मूल्य नहीं, यहाँ विश्वास और प्रेम की कोई स्थिति नहीं। यहाँ तो मनुष्य की पशुता ही एक प्रबल शक्ति और सत्ता है। पर वह कभी-कभी यह भी सोचता है—

"लेकिन यही क्या उसका मानवी धर्म है ! शकुन्तला को यदि वह अपना प्राण मानता आया है तो अपना प्राण क्या इतनी सरलता से छोड़ दिया जाता है ? शकुन्तला उसको भुला दे, तो वह उसे क्यों भुला दे ! प्रेम क्या कोई ऐसी अस्थिर वस्तु है ! आज किया, कल छोड़ दिया; यही क्या प्रेम का स्वरूप है ? प्रेम तो जीवन भर की वस्तु है। और एक जीवन ही क्यों, वह तो अनन्त जीवन का अभिनेता है। तब शकुन्तला के साथ इस प्रकार का व्यवहार करना क्या उसके लिए उचित होगा ! यह तो प्रतिहिंसा हुई। इसमें प्रेम कहाँ है ? प्रेम में तो उत्सर्ग होना होता है, वह तो समर्पण और त्याग की, वस्तु है; उसमें तो अपने आपको मिटाना पड़ता है; उसमें तो तब तक झुलस-झुलसकर, जल-जलकर, रहा जाता है, जबतक उसका निखिल कलेवर पञ्चतत्वों में मिल नहीं जाता।

"तो नरेन्द्र, तू यह सब क्या सोचता है। छिः छिः !! तू कितना गिर रहा है !!!

तेइस

इधर दो सप्ताह से शकुन्तला की तबियत पहले से कुछ सुधरी हुई है। खाँसी भी पहले की-सी नहीं है और उसे ज्वर भी नहीं आया है। पहले की अपेक्षा इन दिनों वह प्रसन्न भी अधिक रही है।

कल रविवार का दिन है। कल नरेन्द्र को कोर्ट नहीं जाना है। इस प्रकार आज की रात उसके लिए कितनी आशापूर्ण, कैसी निश्चिन्ततामयी है! आज कोर्ट से चलते समय ही उसने सोच लिया है कि वह सिनेमा देखने जायगा। साथ में शकुन्तला को भी ले जायगा। कई बार वह बहुत दिनों से किसी अच्छे फ़िल्म के न देख पाने के अभाव की चर्चा कर चुकी है।

कोर्ट से लौटकर नरेन्द्र ने पहले तो कपड़े बदले, फिर वह शकुन्तला के निकट जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। उसके हाथ को छूकर फिर मस्तक का स्पर्श किया। देखा, तबियत ठीक है। परन्तु फिर संशय मिटाने के विचार से थर्मामीटर से उसका तापमान लिया। वह सत्तानवे प्वाइण्ट पाँच निकला, फिर शकुन्तला की ओर सतृष्ण दृष्टि से देखते हुए बोला—"बस, अब कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

शकुन्तला ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"वैसे क्या तुम इसमें चिन्ता की भी आशंका कर रहे थे?"

"हाँ शकुन, जब से तुमको इस तरह कभी-कभी थोड़ा ज्वर रहने लगा है, तब से, जाने क्या बात है, मेरे मन में एक आशंका ने स्थान बना लिया है। उस आशंका से कभी-कभी मैं इतना आतंकित हो उठता हूँ कि मेरा कलेजा-सा फटने लगता है।" नरेन्द्र ने गम्भीर होकर कहा। कहते तो वह कह गया, पर फिर आपही सोचने लगा—"मुझे ऐसी कोई गम्भीर बात इससे नहीं करनी चाहिये। क्योंकि गम्भीर और विशेषकर चिन्ता-पूर्ण बातों का प्रभाव मानसिक रोगी पर बड़ा बुरा पड़ता है।" सो वास्तव में नरेन्द्र के इस कथन और उसके आम्लान मुख को देखकर

शकुन्तला का हृदय द्रुतगति से स्पन्दित हो उठा। फलतः देर तक इकटक वह उसके मुख की ओर देखती रही।

नरेन्द्र अब उठकर खड़ा हो गया। वह बोला—"तुमने स्त्री का हृदय पाया है। तुम क्या जानो शकुन्तला कि पति का प्रेम कैसा उद्दाम होता है! मैं बराबर यही सोचा करता हूँ कि। कैसे, किस तरह, मैं तुम्हारा वियोग सहन कर सकता हूँ!...लेकिन नहीं, फिर भी मैं तुम्हें विश्वास नहीं दिलाना चाहता कि...।....खैर, तुम्हारी तबियत आज अच्छी है। आज तुम चाहो तो मेरे साथ सिनेमा देखने चल सकती हो।....लेकिन नहीं, बिना डाक्टर से पूछे मैं ऐसा साहस नहीं कर सकता।"

और वह तुरन्त फ़ोन पर जा पहुँचा।

इसी क्षण शकुन्तला ने उठकर एक पेग ब्राण्डी पी ली। फिर आराम-कुरसी पर बैठकर, इतमीनान के साथ, वह पनडब्बे से पान निकाल कर खाने लगी।

नरेन्द्र ने झट आकर कहा—"उनका कहना है कि दुःखान्त फ़िल्म देखना उनके लिए बड़ा ही ख़तरनाक है।....और आज जिस फ़िल्म को देखने के लिए मैं जाना चाहता था, वह दुःखान्त ही है शकुन्तला। तो अब मैं भी न जाऊँगा।"

शकुन्तला कुछ अधिक चैतन्य हो गयी थी। अस्फुट हास्य आनन पर छिटकाते हुए वह कहने लगी—"तुम्हारी तबियत हो, तो देख आओ। तुम अपना मन मारकर इस तरह कैसे रहोगे? न, यह न होगा। मैं अपने पीछे तुमको कष्ट नहीं देना चाहती।"

नरेन्द्र के लिए यही स्थिति संकटापन्न है। शकुन्तला का यह स्नेहाभिषिक्त मृदुल कण्ठस्वर, सलोने प्यार से सिक्त उसका यह व्यवहार ही तो उसको विमूढ़ बना देता है। उसका समस्त ज्ञान नारी के इस मोहक रूप में कैसा भूलुण्ठित हो उठता है! उसका सोचा हुआ समस्त, उसका निश्चय किया हुआ अणु-अणु, उस क्षण जैसे कुछ रह ही नहीं जाता, वह एकदम से अपदार्थ, अत्यंत तुच्छ वस्तु, हो उठता है। वह भूल जाता

है कि कहीं कोई विच्छेद भी है, कहीं कोई रंध्र भी है। वह सोचने लगता है कि यह सब कुछ नहीं है। मेरी यह शकुन ही एक सत्य है, और सभी कुछ मिथ्या है।

शकुन्तला एक कविता-पुस्तक के पृष्ठ उलट रही थी। नरेन्द्र उसकी बात को सुनकर निर्वाक्, निश्चल खड़ा-खड़ा खिड़की से झाँकते हुए निर्मल आकाश की ओर देख रहा था। इसी समय कमलनयन उसे याद आ गया। कई दिनों से उससे भेंट नहीं हुई थी। एक बार जी में आया—शकुन से पूछे कि कविजी आजकल देख नहीं पड़ते। पर कुछ सोचकर वह रुक गया। सुरेन्द्र के पढ़ने के कमरे की ओर जाकर द्वार पर खड़ा हो गया।

सुरेंद्र ने देखा, चिक की ओट में उसके अग्रज खड़े हुए हैं। अतः कुछ देर तक तो वह पढ़ने में अपना मन स्थिर किये रहा। परन्तु जब देखा कि वे चुपचाप खड़े हैं, कभी-कभी टहलने लगते हैं; तो उसने लक्ष किया कि वे किसी उलझन में हैं। तब वह कुछ अस्तव्यस्त हो उठा।

इसी समय नरेन्द्र ने पूछा—"तुम्हारे मास्टर साहब का क्या हाल-चाल है? कई दिन से देख नहीं पड़े! कोई समाचार भी नहीं मिला।"

सुरेन्द्र बोला—"हाँ, वे परसों से नहीं आ रहे हैं। मुझसे कह गये हैं—"मैं एक आवश्यक काम से कानपुर जा रहा हूँ। तीन-चार दिन में लौटूँगा। भाभी को मैं बता भी चुका हूँ।"

नरेन्द्र भीतर चला आया। जाते ही उसने शकुन्तला से कहा—"कविजी आजकल नहीं आ रहे हैं। क्या बात है?"

शकुन्तला पुस्तक के पृष्ठ से दृष्टि हटाकर बोली—"हाँ, नहीं आ रहे हैं। किसी काम से कानपुर गये हैं। सुरेन्द्र मुझे बता चुका है।"

नरेन्द्र कहने लगा—"विचित्र प्रकृति का वह व्यक्ति है। इतने दिन मेरे साथ पढ़ा है, तो भी मैं इसे पूरी तरह पा नहीं सका। समझ में नहीं आता—क्या सोचता है, क्या करता है? मैंने तुमसे बतलाया ही था, स्कूल-कमेटी ने उसे नियुक्त करना स्वीकार कर लिया है। मैंने उससे कहा

इसलिये नहीं कि वह अजीब तबियत का आदमी है; मालूम नहीं क्या सोचने लगे। यही उचित समझा कि हेडमास्टर साहब ख़ुद ही सब कुछ तै कर लेंगे। व्यर्थ ही मुझे बीच में पड़ने की क्या ज़रूरत है! लेकिन मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि स्कूल की नियमित नौकरी भी शायद ही उससे निभ सके। नौकरी करनेवालों को थोड़ा सहनशील होना पड़ता है। और इन कविजी में सहनशीलता का सर्वथा अभाव है। सच बात तो यह है कि ये महाशय पूरे कवि ही हैं; और कुछ हो नहीं सकते।"

शकुन्तला ने विहँसते हुए कह दिया—"और कुछ वे होना भी नहीं चाहते। वे कभी अनुभव ही नहीं करते कि उनके जीवन में कहीं कोई अभाव भी है। यही कारण है कि वे अपनी स्थिति से संतुष्ट रहकर सदा मस्त रहते हैं। और ठीक भी है। कवि को ऐसा होना भी चाहिये।"

"यहीं तुम भूल रही हो शकुन" नरेन्द्र कहने लगा—"यह कोई गौरव की बात नहीं है कि हम मस्तफ़क़ीर रहकर अपने आपको सदा भुलावे में ही डाले रक्खें। जिनको खाने-पहनने की भी उचित सुविधा नहीं है, जो बहुत ही हीन श्रेणी का जीवन व्यतीत करते हैं, विवाह करके ठीक तरह से गार्हस्थ्य जीवन जो नहीं व्यतीत करते, जो एक अवारा की तरह इधर-उधर घूमा करते हैं; जिनके जीवन की कोई एक धारा नहीं, कोई एक गति नहीं; वे संत भले ही हो सकें, अमर साहित्यकार नहीं हो सकते। जिस उच्छृङ्खलता से लिपटे रहकर, वे अनिश्चित दिनचर्य्या, अनिश्चित रहन-सहन और अनिश्चित कार्यक्रम को अपना गौरव, अपनी विशेषता या विचित्रता का रूप दिया करते हैं, वह उनके समाज और देश, उनकी भाषा और उसके साहित्य के लिए अभिमान की वस्तु नहीं हो सकती। वह तो एक मिथ्या दम्भ है, एक प्रकार का आडम्बर। वह उनकी असमर्थता की अधोगति का एक रूपकमात्र है।

'कबीर और तुलसीदास का युग गया शकुन। वह अब आ भी नहीं सकता। अब तो रोम्याँ रोलाँ और टाल्सटाय, रवीन्द्र और बर्नर्ड शा का युग है। विश्व-साहित्य के इस संघर्षमय युग में अव्यस्थित रहकर

आदमी पागल ही बना रहेगा, साहित्यकार के गौरव को वह कभी सम्हाल नहीं सकेगा।

शकुन्तला को नरेन्द्र की यह तीव्र आलोचना कमलनयन के प्रति कुछ अधिक उग्र जान पड़ी। उसे यह भी प्रतीत हुआ कि इनको उससे घृणा-सी हो गई है। किन्तु उसके विचारों की गम्भीरता और उनकी वास्तविकता को वह कैसे अस्वीकार करती ! परन्तु वह स्वतः जानती है कि कमलनयन ऐसा अबोध नहीं है। वह अपने अभावों से स्वयं युद्ध कर रहा है। फिर भी उसकी स्थिति को उचित रूप से न समझकर इस प्रकार की बातें करना उसके साथ कितना अन्याय करना है !

शकुन्तला नहीं चाहता थी कि वह नरेन्द्र की इन बातों का उत्तर देने को तत्पर हो। एक बार उसने सोचा--"इन्हें बकने ही दूँ। इनके मुँह लगना ठीक नहीं है। क्या जाने, क्या सोचने लगें—एक-एक शब्द के अर्थ, भाव, मर्म और ध्वनि से, पता नहीं, क्या-क्या आशय निकालते रहें।" परन्तु वह अपने आप को इतना क्षुद्र माननेवाली रमणी नहीं है। इस प्रकार के अनपेक्षित संयम को तो वह प्रकृति की एक दुर्बलता मानती रही है। अतएव एकदम से विवर्ण होकर, अत्यन्त तीक्ष्ण स्वर से, उसने उत्तर दिया--"तुम्हारा यह दृष्टिकोण सर्वथा एकांगी है। तुम्हें पता ही नहीं है कि कवि किस प्रकार का प्राणी होता है। आज हमारे समाज में जो विषमता फैली हुई है; योग्यता और प्रतिभा का जो तिरस्कार आज हम निरन्तर देखते हैं; प्रकृति, अभाव आवश्यकता, भूख और अधिकार की दृष्टि से आजकल एक साधारण व्यक्ति उच्चवर्ग के द्वारा कितना ठुकराया जाता है, उसकी उन्नति के अनिवार्य्य साधनों पर भी पूँजीवादी व्यवस्था का कितना अमानुषिक अंकुश और अधिकार आज स्थापित है, इसको वही सहन कर सकता है, जिसमें मनुष्य की साहसी आत्मा मर चुकी होती है, जो कष्ट सहन नहीं कर सकता, शरीर और मन के क्षणिक भोगों का मोह जो त्याग नहीं सकता, घड़ी-घड़ी छोटे-छोटे स्वार्थों से समझौता करते-करते जिन्होंने स्वाभिमान खो दिया है, निरन्तर

भीरु, कायर, नपुंसक का-सा जीवन व्यतीत करते करते जो मनुष्य न होकर वास्तव में इस जगत में कीड़ों की तरह बिलबिलाते रहते हैं; वे नियम से उठते, नियम से बैठते, नियम से काम करते और नियमों, रस्मों, रिवाज़ों, प्रथाओं और अनुशासनों के ही घेरे में रह-रहकर यह समझ लेते हैं कि हम समाज के एक अंग और विधाता हैं। किन्तु समाज की ह्रासमूलक, क्षयशील और निरन्तर गल-गल कर सड़नेवाली दुरवस्थाओं का कितना ज्ञान उन्हें हो पाता है। वह व्यवस्था जो मानवात्मा के स्वाभाविक विकास में बाधक है, वह शान्ति जो श्मशान-सी नीरव और निर्जीव है और वह सामाजिकता जो मनुष्य को सदा यथावत् प्रचलनों और परम्पराओं का गुलाम बनाकर रखना चाहती है, जो लोग नहीं मानते, वे अपने जीवन में चाहे जितने विशृङ्खलित हों और समाज एवं राज के अधिनायक उन्हें चाहे जितना पागल, अपराधी, अराजक और विद्रोही मानते हों, पर वे हैं सदा वन्दनीय और रहेंगे सदा श्रद्धास्पद। क्योंकि उनका सुख अधिकारों की लिप्सा और भोग की वह जघन्य सीमा नहीं है जिसे संस्कृति और परम्परा के पुजारियों ने अपने लिए बहुत बड़े सौभाग्य की वस्तु मान रक्खा है। समझे कि नहीं?

तो यह सब क्या बक गये तुम कवि के सम्बन्ध में। इन आक्षेपों की छाया भी उसको स्पर्श करने का दुस्साहस नहीं कर सकती। अभी तुमने कमलनयन को भी अच्छी तरह से समझ नहीं पाया है। एक दिन आयेगा, जब तुम उसकी इन महत्तम विचार-धाराओं और चरम निर्मल वृत्तियों को समझोगे।"

नरेन्द्र शकुन्तला के इस उत्तर को सुनकर बहुत उत्तेजित हो उठा। उसने कहना चाहा कि उसकी वे निर्मल वृत्तियाँ तुम्हीं को मुबारक हों शकुन; क्योंकि तुम्हारे लिए वह देवता-स्वरूप है। पर मुझे ऐसे देवताओं का यथेष्ट अनुभव हो चुका है। मुझे उनका फिर से परिचय प्राप्त करने की इच्छा ज़रा भी नहीं है। अभी तक उनका जितना परिचय मैं पा चुका हूँ, वही मेरे लिए यथेष्ट है। उसीको अब तक मैं सम्हालकर नहीं रख सका हूँ।

उसे बढ़ाकर इस जीवन को और अधिक और दुरूह और दुष्कर बनाने का साहस अब मुझमें रह नहीं गया है।

परन्तु अपने इस कथन को वह शब्दों की ध्वनि पर ला नहीं सका। उसके भीतर-ही-भीतर एक ओर जैसे कुटिल कुत्सा तितर-बितरकर फैल गयी, तो दूसरी ओर शकुन्तला की कलुषित काया की अपरूप कल्पनाओं से उसका मन घृणा-की-घृणा से भरकर एक अकल्पित यन्त्रणा से छटपटाने लगा। देखते-देखते दुर्निवार कुत्सित भंगिमाओं से उसकी मुद्रा कुटिल, अतिशय कुटिल हो गई। वह कुछ कह लेता, तो सम्भव था कि अपने को सम्हाल भी सकता, पर भीतर-ही-भीतर झुलस-झुलसकर वह और अधिक उग्र हो उठा।

किन्तु उस उग्रता को भी नरेन्द्र ने बाहर नहीं आने दिया। उसने अपनी भाषा को शिथिल कर डाला, अपने विचार की रूप-रेखा बदल डाली! अलबत्ता स्वर की तीक्ष्णता पर वह अपना अधिकार नहीं रख सका। इसके सिवा अपनी मुद्रा को भी वह परिवर्तित न कर सका। उसकी भृकुटियाँ तन गईं, उसके ललाट पर रेखाएँ बन गईं। विकल अधीरता से उसने शकुन्तला से पूछा—"अच्छा शकुन, मेरे शरीर पर हाथ रखकर, मेरी शपथ लेकर, आज मुझे बतला दो कि तुम्हारे हृदय में उस कमलनयन के लिए अधिक आदर या मेरे लिए? बस, एक यही बात मैं जान लेना चाहता हूँ।"

देखते-देखते शकुन्तला के स्वर्ण वर्ण आनन की वह लोल आभा म्लान पड़ गई, अधर-पल्लव फड़क उठे और अश्रु विगलित नयनारविन्द नरेन्द्र के आवेशपूर्ण मुख पर आवर्जित हो पड़े। उच्छ्वास-गर्भित स्वर में, विकल कण्ठ से, उसके मुँह से निकल गया—"ओह! यह तुम पूछते क्या हो? यह भी क्या मेरे कहने की बात है!"

और अन्तिम शब्द कहते-कहते शकुन्तला मूर्छित होकर पलँग पर गिर पड़ी।

नरेन्द्र एकबारगी हतप्रभ हो गया। फिर ज़ोर से चिल्लाकर उसने वहीं से पुकारा—"सुरेन्द्र, सुरेन्द्र !"

निकट के कमरे में कुरसी के ज़ोर से गिरने का शब्द हुआ और दूसरे ही क्षण सुरेन्द्र नरेन्द्र के सामने आ गया।

उस समय नरेन्द्र का हाथ शकुन्तला की नाड़ी पर था। सुरेन्द्र पर दृष्टि पड़ते ही भर्राये हुए स्वर में उसने कहा—"डॉक्टर साहब को फ़ोन कर दो। कह दो, तुरन्त आ जायँ।"

सुरेन्द्र दूसरे कमरे में चला गया।

अब नरेन्द्र भीतर-ही-भीतर सोचने लगा—"न जाने भविष्य के गर्भ में क्या निहित है!...किन्तु कुछ भी हो, तुम मुझे छोड़कर कहीं चल न देना शकुन! अन्यथा...।"

शकुन्तला के ललाट पर से, अपने हाथ को, उसकी सुरभित कुन्तल राशि पर फेरता हुआ नरेन्द्र सजलनयन हो उठा।

थोड़ी देर में डाक्टर जब तक आयें-आयें, तब तक शकुन्तला ने स्वतः आँखें खोल दीं।

किन्तु तब तक नरेन्द्र की भीगी आँखें सूख भी न पाई थीं। शकुन्तला ने चेतना की पहली दृष्टि में जान लिया कि वे रोये हैं। किन्तु वह कुछ बोली नहीं। उसके मन में आया और गया, आया और गया—"तुम मुझे इतना अधिक क्यों चाहते हो कि एक भी आशंका को अपने भीतर ठहरने नहीं देना चाहते? फिर यह भी एक विचित्र बात है कि सब कुछ जानते हुए भी तुम मुझे अस्वीकार नहीं करते! तुम कैसे पुरुष हो कि अपने धन को अपने आगे से खिसकता हुआ देखकर भी प्रतिस्पर्द्धा की उत्तप्त कुत्सा से अपने आपको अक्षुण्ण ही रखना चाहते हो! तुम मुझसे घृणा की चरम कर्कशता से क्यों नहीं पेश आते? ऐसे निष्कपट, ऐसे दुर्लङ्घ्य, ऐसे पत्नीपरायण तुम क्यों हो मेरे स्वामी!"

डाक्टर साहब आकर शकुन्तला की परीक्षा करने लगे।

इधर इस सप्ताह में कोई विशेष बात नहीं हुई थी। इसीलिए डाक्टर

साहब आये नहीं थे। नरेन्द्र ने भी उन्हें बुलाने की आवश्यकता नहीं समझी थी। आधे घंटे तक ख़ूब अच्छी तरह से परीक्षा ले लेने के पश्चात् डाक्टर साहब उस कमरे से बाहर आकर कहने लगे—"हार्ट पहले से भी अधिक वीक हो गया है। जान पड़ता है, मेन्टल ट्रबुल आप इनको ज्यादा देते हैं। ऐसी हालत रही, तो फिर आप मुझे दोष न दे सकेंगे। आप जानते ही हैं—डाक्टर कुछ नहीं कर सकता, अगर्चे मरीज़ का गार्जियन खुद हर तरह से सावधान नहीं रह सकता।"

डाक्टर साहब इतना कहकर, एक नुसख़ा लिखकर, बोले—"जब कभी आप इनको ज्यादा उदासीन देखें, तभी इसकी एक ख़ूराक का प्रयोग करें। मरीज़ को हर तरह से प्रसन्न रक्खें।"

इतना कहकर डाक्टर साहब चले गये।

उस रात को शकुन्तला को फिर ज्वर आ गया। नरेन्द्र रातभर शकुन्तला के निकट कुर्सी डाले बैठा रहा।

सवेरे जब ज्वर उतर गया और शकुन्तला कुछ चैतन्य प्रतीत हुई, तो नरेन्द्र निर्विकार भाव से कहने लगा—"मैंने सारी बातें सोच ली हैं शकुन। मैं तुमको किसी भी प्रकार खोना नहीं चाहता। कमलनयन ज्योंही आया, त्योंही मैं उसे इसी बँगले में, अपने साथ रहने को विवश करूँगा। मैं इस बात की भी चेष्टा करूँगा कि उसको उसी तरह रक्खूँ, जिस तरह मैं या मेरा सुरेन्द्र रहता है। तुम विश्वास न कर सकोगी शकुन, लेकिन मैं प्रेम को एक ईश्वरीय देन मानता हूँ।"

इतना कहकर नरेन्द्र उठा और कल के दिये हुए डाक्टर के नुसख़े की दवा की शीशी से प्याले में एक ख़ूराक़ उँडेलकर, शकुन्तला के होठों के पास ले जाकर, बोला—"लो, इसे पी तो लो।"

दवा पिलाकर नरेन्द्र ने सुरेन्द्र को बुलाकर कहा—"यहाँ बैठो तो ज़रा, मैं नित्यकर्म से निवृत्त हो लूँ।"

नरेन्द्र चला गया। भाभी के निकट आकर सुरेन्द्र पहले तो थोड़ी देर चुप रहा, परन्तु फिर बोला—"आज भैया रातभर तुम्हारे निकट बैठे रहे

हैं। मैंने बारह बजे आकर उनसे कहा था—अब तुम सोओ, मैं बैठा हूँ। पर वे माने नहीं, बोले—नहीं, अब तुम अपनी तबियत ख़राब न करो, जाकर सोओ। मैं बैठा रहूँगा। दुबारा जब मैं तीन बजे फिर आया, तब वे उस कोने की ओर मुँह किये हुए चुपचाप आंसू पोंछ रहे थे।"

शकुन्तला बोली—"मैं सब जानती हूँ।"

उसकी आँखें भर आयीं।

भाभी को दुखी देखकर फिर सुरेन्द्र ने भी कुछ नहीं कहा।

दूसरे दिन स्नान करने के बाद ज्योंही नरेन्द्र कपड़े पहनकर सुचित्त हुआ, उसी समय उसके बँगले में एक चमचमाती हुई नई कार हार्न देती हुई और खड़ी हुई। क्लीनशेव्ड उल्लसित मुख, दुग्धधवल खद्दर का कुरता और नया सुन्दर चप्पल पहने हुए कमलनयन झट से उतरकर सुरेन्द्र के कमरे में आकर बैठ गया। आज उसने सिर के बालों को नये ढंग से सँवारा था। इसके सिवा उसकी नाक पर चढ़ा हुआ चश्मा भी अपनी अनोखी आभा दिखला रहा था।

नरेन्द्र पहले तो कमलनयन को अकस्मात् इस वेश में देखकर अकल्पित विस्मय से भर गया, किन्तु फिर अपने को स्थिर करके चपल भाव से बोल उठा—"कहिये कविजी, क्या नक़्शे हैं?"

नरेन्द्र किसी प्रकार यह नहीं प्रकट करना चाहता था कि हृदय के किसी कोने में वह उससे किसी प्रकार की कुण्ठा भी रखता है। मित्रता में जैसे पारस्परिक व्यवहार में यत्किंचित उच्छृङ्खलता का भी समावेश रहता है, बिल्कुल उसी रूप में केवल हालचाल जानने के लिए उसने यह प्रश्न कर दिया।

किन्तु कमलनयन गम्भीर मुद्रा से कहने लगा—"इधर थोड़े ही दिनों में एकाएक जितनी घटनाएँ संघटित हुई हैं, जब मैं उन सब पर एक दृष्टि डालता हूँ, तब मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि इनके मूल में कोई अलक्षित तत्त्व समाया हुआ है। जो हो, मैं इस समय आपसे विदा माँगने आया हूँ। बार्जटाउन-हाईस्कूल में मुझे नियुक्त करवाने के लिए आपने जो कुछ

जाकर, चुपचाप बैठे हुए नरेन्द्र से कहा—"मास्टर साहब आ गये। वे आपसे मिलना चाहते हैं।"

कई दिन से नरेन्द्र का मानसिक स्वास्थ्य कुछ बिगड़ा हुआ था समाचार पाते ही उसके भाल पर रेखाएं बन गयीं। विस्मयात्मक मुद्रा से वह बोला—"कौन, मास्टर साहब?" फिर आप ही मस्तक पर हाथ देकर उसने तुरन्त पूछा—"कमलनयन? क्या वह जेल से छूटकर आ गया?"

सुरेन्द्र ने कहा—"हाँ, आज पत्र में संवाद भी आ चुका है आपको जान पड़ता है, ख़याल नहीं रहा।"

नरेन्द्र इसके उत्तर में कुछ कह नहीं सका। खड़ा होकर वह एक ओर सूने आकाश की ओर देखने लगा।

सुरेन्द्र खड़ा रहा। उसका अभिप्राय नरेन्द्र का मत लेना था।

कुछ क्षण बाद एकाएक टहलता हुआ आप ही-आप रुककर तब नरेन्द्र बोला—"किन्तु अब वे मुझसे क्यों मिलना चाहते हैं? मैं तो अब किसी से मिलना पसन्द नहीं करता।"

सुरेन्द्र अब भी खड़ा रहा। वह नहीं चाहता था कि कमलनयन को इस प्रकार का कोई उत्तर दिया जाय और वह बिना उनसे मिले ही वापस चला जाय। पर इसी समय कुछ सोचकर नरेन्द्र बोला—"अच्छा, ड्राइवर को यहाँ भेज दो और तुम जाओ। मास्टर साहब से कह दो, कहा है—अभी बुलाता हूँ। तब तक ज़रा ठहरें।"

ड्राइवर के आने पर नरेन्द्र ने उससे कहा—"मीरगंज मकान नंबर''' में मिस नूरजहाँ रहती हैं। फ़ौरन ले आओ। जो भी चार्ज उनका होगा, दिया जायगा।"

ड्राइवर चला गया।

कमलनयन की समझ में नहीं आ रहा था, मिलने में इतना विलम्ब होने का कारण क्या है? उसने एक बार सुरेन्द्र से भी पूछा; परन्तु उसने यही उत्तर दिया—"उन्होंने आपसे कहने के लिए इतना ही कहा था। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता।"

थोड़ी देर बाद मिस नूरजहाँ नरेन्द्र के सामने थीं।

नरेन्द्र कुछ वस्तुएँ बतलाते हुए बोला—"यह साड़ी पहननी होगी, यह अण्डर-वियर, यह ब्लाउज़। मत्थे पर इस तरह की बिन्दी, मुख पर यह स्नो। फ़ौरन तैयार होकर आओ।"

नूरजहाँ समझ न सकी, मामला क्या है। पर फ़ीस का ख्याल करके उसने कोई आपत्ति नहीं की। नरेन्द्र ने जैसा-जैसा आदेश दिया, उसका पालन वह अक्षरशः करती गई। अन्त में नरेन्द्र ने कमलनयन को बुला भेजा। उसके आने पर विधिवत् नमस्कार करके उसे एक कुरसी पर बैठने का संकेत किया। कुरसी के आगे एक छोटा टेबिल था, जिस पर ट्रे में चाय की सामग्री विधिवत् लगी हुई थी।

इसी क्षण एक ओर परदे को उठाकर मिस नूरजहाँ ने मुसकराते हुए प्रवेश किया। निकट आने पर उसे एक ओर आसन देते हुए नरेन्द्र ने क्षिप्त भाव से कहा—"चाय पियो कमल बाबू, चाय। शकुन्तला तुम भी पियो। पियो कमल बाबू; देखो कैसी अच्छी चाय है! और शकुन्तला, तुम कमलनयन की ओर टकटकी लगाकर देखो। शरमाने का कोई काम नहीं है। चाय यद्यपि ठंढी है, लेकिन पीकर देखो, तब कहो—कैसी है। (चौंकते हुए) क्यों कविजी! हा हा हा हा! हा हा हा हा!! ठीक भी है। आप हर एक बात मन-ही-मन कह लेते हैं। अरे आप तो चुप हैं! लेकिन शकुन्तला, तुम क्यों चुप हो! तुम तो चुप रहनेवाली नारी नहीं हो। और तुम भी कवि जी, चुम्बन करो न शकुन्तला को—उसी दिन की तरह! मित्रता का इतना अच्छा निर्वाह! हा हा हा हा! हा हा हा हा!! दोनों इस तरह बैठे हुए हैं जैसे एक दूसरे को पहचानते ही नहीं हैं। हा हा हा हा!!!"

नरेन्द्र बराबर ऐसी भंगिमाएँ प्रदर्शित करता है कि कमलनयन चतसो रह जाता है—इन्हें हो क्या गया था!

किन्तु कमलनयन और सहन नहीं कर सका। प्रतिहत होकर वह उठकर खड़ा हो गया! उसका मुख विवर्ण हो गया था। नरेन्द्र के इस रूप की

उसने कल्पना तक न की थी। उसकी आँखों में आंसू आ गये। विकल कण्ठ से वह बोला—"सम्हलो नरेन्द्र भैया, शान्त होओ! मैं जानता हूँ, तुम अपने को खो चुके हो। शकुन्तला चली क्या गई, साथ में तुमको भी लेती गई। यह भी मैं समझ सका हूँ। किन्तु यह वियोग एक तुम्हारे लिए ही नया नहीं निर्मित हुआ। मनुष्य-मात्र के लिए यह बना है। कोई इससे बच नहीं सका है। आज नहीं, कल भी नहीं, परन्तु किसी-न-किसी दिन तुम यह अवश्य अनुभव करोगे नरेन्द्र भाई कि मानव जीवन में जो भी शाश्वत सत्य है, उसकी प्राप्ति इसी प्रकार के विच्छेदों, ऐसे ही आघातों और उद्वेलनों से होती है।"

नरेन्द्र को अट्टहास करते देख सुरेन्द्र भी वहीं आ गया था।

शकुन्तला के स्वर्गवास के पश्चात् नरेन्द्र ने छै मास की छुट्टी ले रक्खी है। सुरेन्द्र अपने अग्रज की आन्तरिक पीड़ा के इस असह्य रूपान्तर को उत्तरोत्तर लक्ष करता आया है। आजकल उसकी कैसी चेष्टाएँ चल रही हैं, वह कैसी मानसिक स्थिति में है, कर क्या रहा है, इसको समझने की चेष्टा में वह निरंतर लीन रहता है। अतएव भाई की इस विक्षिप्तता को देखकर वह स्तम्भित हो उठा। इसी क्षण उसने कमलनयन के कथन को सुना। उसके हृदय का अमृत-स्रोत उसके नयनों के पथ से फूट निकला। एक ओर खड़ा होकर वह सिसकने लगा।

कमलनयन ने लक्ष किया, नरेन्द्र वास्तव में विक्षिप्त हो रहा है। उसकी वह सुमन-शोभन मुद्रा अतिशय अपरूप हो रही है।

देखते-देखते मुट्ठियाँ बाँधकर, दाँतों से निचले होंठों पर आघात करते हुए, नरेन्द्र कहने लगा—"मेरा पिस्टल लाओ सुरेन्द्र, पिस्टल। तुरन्त लाओ। मैं किसी प्रकार का उपदेश नहीं सुनना चाहता। मैं संसार नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं चाहता। मैं कुछ नहीं चाहता। मैं तो पूर्णाहुति चाहता हूँ, निवृत्ति चाहता हूँ।...अरे! तुम खड़े हो अब तक कृतघ्न!"

थोड़ी देर तक आज्ञापालन की प्रतीक्षा करने के अनन्तर नरेन्द्र स्वयं ही पिस्टल लाने को चल खड़ा हुआ। किन्तु कमलनयन ने झट

। उसे पकड़कर रोक लिया। फिर तत्परता से उसने सुरेन्द्र से कहा--
नौकरों को भेजो, जो ज़रूरत पड़ने पर इनको सम्हालने में सहायता दे
कें। फिर फ़ौरन डाक्टर को फ़ोन करके बुलाओ। जल्दी करो, सावधान
ो और घबड़ाओ मत।"

नरेन्द्र ने जैसे दानव बनकर कमलनयन से अपने को छुड़ाना चाहा, पर
मलनयन ने उसे ऐसा जकड़ लिया कि नरेन्द्र टस-से-मस न हो सका। तब
ण भर बाद नरेन्द्र बोला—"अच्छा, मैं चुपचाप यहाँ बैठता हूँ।"

कमलनयन मान गया। सुरेन्द्र चला गया।

फिर उस वारांगना की ओर दृष्टि डालते हुए कमलनयन ने कहा--
ाप तशरीफ ले जायँ।"

मिस नूरजहाँ यों भी एक ओर भय के मारे काँप रही थी। आदेश
र तुरन्त वापस लौट गईं।

नौकर आ गये थे। वे एक ओर खड़े थे।

इसी क्षण नरेन्द्र कमलनयन पर आरक्त आँखें डालते हुए कहने
—"आपने हत्या की है। आप अपने को गिरफ्तार समझें। मैं
क एक मैजिस्ट्रेट की हैसियत से आपका बयान लेना चाहता हूँ।
, आपको क्या कहना है?"

कमलनयन का अन्तःकरण हिल गया। क्षण भर वह नरेन्द्र की ओर
भाव से देखता रह गया।

रन्तु फिर साहस करके उसने कहा—"इस हत्या की सारी जिम्मेदारी
ाह-प्रथा पर है जो नारी को पति के आगे पूँजी की भाँति जड़ बना
है—पुरुष की उस स्वार्थ-भावना पर है जो नारी की स्वतन्त्र सत्ता
एकाधिपत्य स्थापित रखना चाहती है। रह गयी मित्रता की बात,
उसका भी जैसा निर्वाह किया है, दूसरा कर नहीं सकता।"

न्तु इतना सब कहने का भी कोई फल नहीं हुआ। सभ्यता
ष्टता की सीमा तोड़कर नरेन्द्र ने कमलनयन के ऊपर थूक दिया
—"तुम झूठ बोलते हो, तुमको धिक्कार है।"

कि शपथपूर्वक मुझसे पूछ बैठे—बताओ तुम्हारी दृष्टि में, दोनों अधिक आदरणीय है ? मैं चोट खाकर मूर्छित हो गई।

दूसरे दिन अनावश्यक रूप से, अतिशय भावुकता में आकर, उठे—"अब की बार जब कमलनयन आयेगा, तब मैं उसे अपने इसी बँगले में, रक्खूँगा। बात यह है कि मैं तुमको किसी भी खोना नहीं चाहता !"

मास्टर साहब, अब बोलो, मैं क्या करूँ ? क्या नारी को ये नहीं समझते ? वह किसी से हँसकर बातें न करे, किसी के साथ विचार-विनिमय न करे, किसी को अत्यधिक आदरणीय न माने, कैसे सम्भव हो सकता है ! माना कि मैं तुम (कमलनयन) को दे समझती हूँ, तो क्या इसका अर्थ उन्हें यही लगाना चाहिये कि मैं आपको तुम्हारे आगे सर्वथा खो बैठी हूँ ?

किन्तु मैं तो कुछ और कहना चाहती हूँ। थोड़ी देर के लिए मैं स्वीकार किये लेती हूँ कि मैं तुम्हीं को अपना मानती हूँ, तुम्हीं से करती हूँ। किन्तु वे मेरे इस प्रेम को यदि सहन नहीं कर सकते; तो यह जानना चाहती हूँ कि क्या वे मुझे भी सहन नहीं कर सकते ? औ यही बात यदि सत्य हो, तो मैं यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहूँगी कि त वे मुझे नहीं चाहते, क़तई नहीं चाहते। तब वे मेरे प्रेम का प्रदर्शन-मा चाहते हैं, उसे कोरा अभिनय मानते हैं, प्रेम को वे कर्तव्य का अन्त बनाकर रखना चाहते हैं। पर ऐसा नहीं हो सकता—नहीं हो सकता मैं क्या जानती नहीं हूँ कि मैं किसकी हूँ ? मानवात्मा का पल-प्रति-प अकल्पित है। मालूम नहीं, किस क्षण तुम किसी व्यक्ति की प्रतिभा इतना मुग्ध हो जाते हो कि सोचते हो, यह मुझे मिल जाय, मेरा हो जा तो इसमें पाप क्या है ? मैं जीवन के मृदुल झकोरों में यदि कभी कि कवि की अन्तरात्मा के साथ खेलती हूँ, तो तुम उसमें कलुष खोज बैठते हो ! नारी की स्वतन्त्र सत्ता के साथ तुम्हारा यह कैसा न्याय है क्या संसार में कोई ऐसा भी पुरुष है, या हो सकता है, जिसने किसी प